अष्टपाहुड़ महामण्डल विधान

लेखक

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पी-एच.डी., डी-लिट्

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

43/2-ए, पद्मोकुर रोड़, भवानीपुर, कोलकाता - 700020

एवं

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर-302 015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण : 3 हजार
(7 नवम्बर, 2018 ई.)
भ. महावीर निर्वाणोत्सव
दीपावली

मूल्य : **25 रुपये**

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स,
ए-4, बापूनगर, जयपुर

मुद्रक :
रैनवो ऑफसेट प्रिंटर्स
बाईस गोदाम, जयपुर

अनुक्रमणिका

1.	प्रक्षाल पाठ	1
2.	विनय पाठ	4
3.	पूजा पीठिका	6
4.	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन	11
5.	मंगलाचरण	15
6.	अष्टपाहुड़ पूजन	16
7.	दर्शनपाहुड़ पूजन	22
8.	सूत्रपाहुड़ पूजन	38
9.	चारित्रपाहुड़ पूजन	51
10.	बोधपाहुड़ पूजन	68
11.	भावपाहुड़ पूजन	87
12.	मोक्षपाहुड़ पूजन	128
13.	लिंगपाहुड़ और शीलपाहुड़ पूजन	158
14.	महाऽर्घ्य	177
15.	शान्तिपाठ/विसर्जन	178
16.	अष्टपाहुड़ भक्ति	180

प्रस्तुत संस्करण में कीमत करनेवाले दातारों की सूची

5,000/- रुपये श्रीमती खेतबाई नरसी गढ़ा ह. श्रीमती सिद्धी शान्तिलाल गढा, मुम्बई।

2,100/- श्री शिवकान्त अच्युतकान्त जैन जसवन्तनगर, डॉ. चन्द्रकीर्ति विशाल कीर्ति जाखलोन, श्री प्रेमचन्दजी लीला जैन दौसा, श्री ताराचन्दजी सोगानी, जयपुर, श्री नेमिचन्द चंपालाल भोरावत चै. ट्रस्ट, (सेमारीवाले) उदयपुर ह. सुरेश भोरावत।

1,100/- सुश्री माधुरी जैन मानसरोवर, जयपुर, श्री मनीष सीमा काला सेठी कालोनी, जयपुर, श्रीमती पुष्पलता जैन (जीजीबाई) ध.प. श्री अजितकुमारजी जैन, छिन्दवाड़ा, श्री पदम जैन खिलोनावाले, जयपुर, श्री आई.एम. जैन रतलाम, श्री वीतराग विज्ञान महिला मण्डल, बापूनगर जयपुर, श्री निहालचन्दजी अचरजदेवी जैन, जयपुर।

1,000/- श्री महेन्द्रकुमार संजीवकुमार गोधा, श्रीकान्ताबाई पूनमचन्दजी छाबड़ा, जयपुर।

500/- श्री कन्हैयालाल कमलकुमार दुग्गड़ रायपुर, श्रीमती निरवबेन विजय जे. कापड़िया मुम्बई, श्री धनसिंहजी जैन पिड़ावा, श्रीमती चन्द्रा राखी जैन जयपुर, श्री नथमलजी झाँझरी जयपुर, श्री कान्तिलालजी जैन सेमारी, श्रीमती कंचन मधुप भूरा जयपुर।

300/- श्री महेशकुमार जैन श्रीमती संतोष जैन, सोनागिर, **251/-** श्री वैभव जैन, ग्वालियर।

30,251/- कुल योग

प्रकाशकीय

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल को गद्य लेखन पर तो महारत हासिल है ही, पद्य लेखन में भी कोई उनका सानी नहीं है। पश्चात्ताप खण्डकाव्य व वैराग्य जैसे महाकाव्यों की रचना के उपरान्त दिगम्बर जैन समाज के सर्वमान्य आचार्य कुन्दकुन्दप्रणीत पंचपरमागमों पर समयसार महामण्डल विधान, प्रवचनसार महामण्डल विधान और नियमसार महामण्डल विधान लिखकर आपने यह सिद्ध भी कर दिया है। इन विधानों में प्राकृत की मूल गाथाओं एवं इनकी टीका में समागत कलशों का रसास्वादन भी पाठकों ने अन्तर्मन से किया।

इसी शृंखला में अब आपने अष्टपाहुड़ महामण्डल विधान को अपनी लेखनी का विषय बनाया है, निश्चित ही पूर्व विधानों की भांति इस कृति का समुचित समादर होगा।

आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द की रचनाओं से आपका विशेष लगाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, तभी आपने समयसार की ज्ञायकभावप्रबोधिनी, प्रवचनसार की ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी तथा नियमसार की आत्मप्रबोधिनी हिन्दी टीका तो लिखी ही, साथ ही समयसार अनुशीलन पांच भागों में प्रवचनसार अनुशीलन तीन भागों में व नियमसार अनुशीलन तीन भागों में, लिखकर अध्यात्म जैसे गूढ़ विषय को अपनी लेखनी का विषय बनाया। इसके साथ ही समयसार का सार तथा प्रवचनसार का सार लिखकर अध्यात्म प्रेमियों को आचार्यकुन्दकुन्द का हार्द समझना आसान कर दिया।

आपकी महत्वपूर्ण कृतियाँ धर्म के दशलक्षण, क्रमबद्धपर्याय, बारह भावना : एक अनुशीलन, परमभावप्रकाशक नयचक्र, चैतन्यचमत्कार, निमित्तोपादान, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, शाश्वत तीर्थधाम : सम्मेदशिखर, शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में, आत्मा ही है शरण और गोम्मटेश्वर बाहुबली : एक नया चिन्तन आदि प्रमुख हैं।

इन सब कृतियों ने जैनसमाज एवं हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। आपके लिखे साहित्य की अबतक आठ भाषाओं में ४० लाख से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आप अबतक लगभग ६ हजार पृष्ठ लिखे हैं, जो प्रकाशित हो चुके हैं।

अब तक आपके साहित्य पर तीन छात्रों ने शोधकार्य किया है – जिनमें डॉ. महावीरप्रसाद जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व' विषय पर और डॉ. सीमा जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक

अनुशीलन' विषय पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर से तथा डॉ. राजेन्द्र संगवे द्वारा मद्रास विश्वविद्यालय से 'डॉ. हुकमचंद भारिल्ल की गद्य विधाओं में जैनदर्शन' विषय पर पी-एचडी की उपाधि प्राप्त की है।

इसके साथ ही अरुणकुमार जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य', नीतू चौधरी द्वारा 'शिक्षा शास्त्री परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन', ममता गुप्ता द्वारा 'धर्म के दशलक्षण : एक अनुशीलन' तथा शिखरचन्द जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' विषय पर लघु शोध प्रबन्ध लिखे हैं जो आपके साहित्यिक अवदान के जीवन्त दस्तावेज हैं।

समयसार विधान, प्रवचनसार विधान, नियमसार विधान व अष्टपाहुड़ विधान के पश्चात् पंचास्तिकाय विधान भी आपकी लेखनी के विषय बनें - हम ऐसी आशा करते हैं।

आप स्वस्थ रहें, दीर्घायु को प्राप्त हों और नित नूतन सृजन कर हम सबका इसी प्रकार मार्ग प्रशस्त करते रहें - यही पवित्र भावना है।

इस विधान में उत्थानिका व मंत्र बनाने तथा प्रूफ रीडिंग का कार्य पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने श्रमपूर्वक किया है। आपके उक्त कार्य में अच्युतकान्त शास्त्री एवं जिनेन्द्र शास्त्री का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। अतः हम आप तीनों के आभारी हैं।

सुन्दर टाईप सैटिंग के लिए श्री कैलाशचन्द शर्मा तथा आकर्षक मुखपृष्ठ और प्रकाशन के लिए श्री अखिल बंसल को भी धन्यवाद देते हैं।

हमें विश्वास है कि इस विधान के निमित्त से यह विधान करने वाले को अष्टपाहुड़ की विषयवस्तु का सहज ही स्वाध्याय होगा।

वे इसमें वर्णित अपनी शुद्धात्मा का स्वरूप समझकर उसके आश्रय से अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करें - इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

१ नवम्बर २०१८ ई. **- ब्र. यशपाल जैन,** प्रकाशन मंत्री

अष्टपाहुड़ का सार

दर्शनपाहुड़

छत्तीस गाथाओं में निबद्ध इस दर्शनपाहुड़ में मंगलाचरण के उपरान्त आरंभ से ही सम्यग्दर्शन की महिमा बताते हुए आचार्यदेव लिखते हैं कि जिनवरदेव ने कहा है कि धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है; अतः जो जीव सम्यग्दर्शन से रहित हैं, वे वंदनीय नहीं हैं। भले ही वे अनेक शास्त्रों के पाठी हों, उग्रतप करते हों, करोड़ों वर्ष तक तप करते रहें; तथापि जो सम्यग्दर्शन से रहित हैं, उन्हें आत्मोपलब्धि नहीं होती, निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती, आराधना से रहित होने के कारण वे संसार में ही भटकते रहते हैं; किन्तु जिनके हृदय में सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है, उन्हें कर्मरूपी रज का आवरण नहीं लगता, उनके पूर्वबद्ध कर्मों का भी नाश हो जाता है।

जो जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों से ही भ्रष्ट हैं, वे तो भ्रष्टों में भी भ्रष्ट हैं; वे स्वयं तो नाश को प्राप्त होते ही हैं, अपने अनुयायियों को भी नष्ट करते हैं। ऐसे लोग अपने दोषों को छुपाने के लिए धर्मात्माओं को दोषी बताते रहते हैं।

जिसप्रकार मूल के नष्ट हो जाने पर उसके परिवार - स्कंध, शाखा, पत्र, पुष्प, फल की वृद्धि नहीं होती; उसीप्रकार सम्यग्दर्शनरूपी मूल के नष्ट होने पर संयमादि की वृद्धि नहीं होती। यही कारण है कि जिनेन्द्र भगवान ने सम्यग्दर्शन को धर्म का मूल कहा है।

जो जीव स्वयं तो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं, पर अपने को संयमी मानकर सम्यग्दृष्टि से अपने पैर पुजवाना चाहते हैं; वे लूले और गूँगे होंगे अर्थात् वे निगोद में जावेंगे, जहाँ न तो चल-फिर ही सकेंगे और न बोल सकेंगे; उन्हें बोधिलाभ अत्यन्त दुर्लभ है। इसीप्रकार जो जीव लज्जा, गारव और भय से सम्यग्दर्शन रहित लोगों के पैर पूजते हैं, वे भी उनके अनुमोदक होने से बोधि को प्राप्त नहीं होंगे।

जिसप्रकार सम्यग्दर्शन रहित व्यक्ति वंदनीय नहीं है; उसीप्रकार असंयमी भी वंदनीय नहीं है। भले ही बाह्य में वस्त्रादि का त्याग कर दिया हो, तथापि

यदि सम्यग्दर्शन और अंतरंग संयम नहीं है तो वह वंदनीय नहीं है; क्योंकि न देह वंदनीय है, न कुल वंदनीय है, न जाति वंदनीय है; वंदनीय तो एकमात्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप गुण ही हैं; अतः रत्नत्रय विहीन की वंदना जिनमार्ग में उचित नहीं है।

जिसप्रकार गुणहीनों की वंदना उचित नहीं है; उसीप्रकार गुणवानों की उपेक्षा भी अनुचित है। अतः जो व्यक्ति सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवन्त मुनिराजों की भी मत्सरभाव से वंदना नहीं करते हैं, वे भी सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा नहीं हैं।

अरे भाई! जो शक्य हो, वह करो; जो शक्य न हो, वह न करो; पर श्रद्धान तो करना ही चाहिए; क्योंकि केवली भगवान ने श्रद्धान को ही सम्यग्दर्शन कहा है। यह सम्यग्दर्शन रत्नत्रय में सार है, मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी है। इस सम्यग्दर्शन से ही ज्ञान और चारित्र सम्यक् होते हैं।

इसप्रकार सम्पूर्ण दर्शनपाहुड़ सम्यक्त्व की महिमा से ही भरपूर हैं। इस पाहुड़ में समागत निम्नांकित सूक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं -

१. **दंसणमूलो धम्मो** – धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है।
२. **दंसणहीणो ण वंदिव्वो** – सम्यग्दर्शन से रहित व्यक्ति वंदनीय नहीं है।
३. **दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं** – जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं, उनको मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।
४. **सोवाणं पढमं मोक्खस्स** – सम्यग्दर्शन मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी हैं।
५. **जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइं तं च सद्दहणं** – जो शक्य हो, वह करो; जो शक्य न हो, वह न करो; पर श्रद्धान तो करो ही।

सूत्रपाहुड़

सत्ताईस गाथाओं में निबद्ध सूत्रपाहुड़ में अरहंतों द्वारा कथित, गणधर देवों द्वारा निबद्ध, वीतरागी नग्न दिगम्बर सन्तों की परम्परा से समागत सुव्यवस्थित जिनागम को सूत्र कहकर श्रमणों को उसमें बताये मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी गई है; क्योंकि जिसप्रकार सूत्र (डोरा) सहित सुई खोती नहीं है, उसीप्रकार सूत्रों (आगम) के आधार पर चलनेवाले श्रमण भ्रमित नहीं होते, भटकते नहीं हैं।

सूत्र में कथित जीवादि तत्त्वार्थों एवं तत्संबंधी हेयोपादेय संबंधी ज्ञान और श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। यही कारण है कि सूत्रानुसार चलनेवाले श्रमण कर्मों

का नाश करते हैं। सूत्रानुशासन से भ्रष्ट साधु संघपति हो, सिंहवृत्ति हो, हरिहर-तुल्य ही क्यों न हो; सिद्धि को प्राप्त नहीं करता, संसार में ही भटकता है। अतः श्रमणों को सूत्रानुसार ही प्रवर्तन करना चाहिए।

जिनसूत्रों में तीन लिंग (भेष) बताये गये हैं; उनमें सर्वश्रेष्ठ नग्न दिगम्बर साधुओं का है, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों का है और तीसरा आर्यिकाओं का है। इनके अतिरिक्त कोई भेष नहीं है, जो धर्म की दृष्टि से पूज्य हो।

साधु के लिंग (भेष) को स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं -

''जह जायरूवसरिसो तिलतुसमेत्तं ण गिहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम्।। १८ ।।

(हरिगीत)

जन्मते शिशुवत् अकिंचन नहीं तिल-तुष हाथ में।
किंचित् परीग्रह साथ हो तो श्रमण जाँयें निगोद में।। १८ ।।

जैसा बालक जन्मता है, साधु का रूप वैसा ही नग्न होता है। उसके तिलतुषमात्र भी परिग्रह नहीं होता। यदि कोई साधु थोड़ा-बहुत भी परिग्रह ग्रहण करता है, तो वह निश्चित रूप से निगोद जाता है।''

वस्त्र धारण किए हुए तो तीर्थंकरों को भी मोक्ष नहीं होता है, तो फिर अन्य की तो बात ही क्या करें? एक मात्र नग्नता ही मार्ग है, शेष सब उन्मार्ग है। स्त्रियों के नग्नता संभव नहीं है, अतः उन्हें मुक्ति भी संभव नहीं है। उनकी योनि, स्तन, नाभि और काँखों में सूक्ष्म त्रसजीवों की उत्पत्ति निरन्तर होती रहती है। मासिक धर्म की आशंका से वे निरन्तर त्रस्त रहती हैं तथा स्वभाव से ही शिथिल भाववाली होती हैं, अतः उनके उत्कृष्ट साधुता संभव नहीं है, तथापि वे पापयुक्त नहीं हैं, क्योंकि उनके सम्यग्दर्शन, ज्ञान और एकदेश चारित्र हो सकता है।

इसप्रकार सम्पूर्ण सूत्रपाहुड़ में सूत्रों में प्रतिपादित सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी गई है।

चारित्रपाहुड़

पैंतालीस गाथाओं में निबद्ध इस चारित्रपाहुड़ में सम्यक्त्वाचरण चारित्र और संयमाचरण चारित्र के भेद से चारित्र के भेद किये गये हैं और कहा गया

है कि जिनोपदिष्ट ज्ञान-दर्शन शुद्ध सम्यक्त्वाचरण चारित्र है और शुद्ध आचरणरूप चारित्र संयमाचरण है।

शंकादि आठ दोषों से रहित, निःशंकादि आठ गुणों (अंगों) से सहित, तत्त्वार्थ के यथार्थ स्वरूप को जानकर श्रद्धान और आचरण करना ही सम्यक्त्वाचरण चारित्र है।

संयमाचरण चारित्र सागार और अनगार के भेद से दो प्रकार का होता है। ग्यारह प्रतिमाओं में विभक्त श्रावक के संयम को सागार संयमाचरण चारित्र कहते हैं। पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति आदि जो उत्कृष्ट संयम निर्ग्रन्थ मुनिराजों के होता है, वह अनगार संयमाचरण चारित्र है।

जो व्यक्ति सम्यक्त्वाचरण चारित्र को धारण किये बिना संयमाचरण चारित्र को धारण करते हैं, उन्हें मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती; सम्यक्त्वाचरण सहित संयमाचरण को धारण करनेवाले को ही मुक्ति की प्राप्ति होती है।

उक्त सम्यक्त्वाचरण चारित्र निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अतः यहाँ प्रकारान्तर से यही कहा गया है कि बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के मात्र बाह्य क्रियाकाण्डरूप चारित्र धारण कर लेने से कुछ भी होनेवाला नहीं है। इसप्रकार इस पाहुड़ में सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित निर्मल चारित्र धारण करने की प्रेरणा दी गई है।

बोधपाहुड़

६२ गाथाओं में निबद्ध इस बोधपाहुड़ में ग्यारह स्थलों के माध्यम से आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन, जिनबिंब, जिनमुद्रा, ज्ञान, देव, तीर्थ, अरहंत और प्रव्रज्या को स्पष्ट किया गया है। इनको स्पष्ट करते हुये अधिकांश को मुनिराज के रूप में बताया गया है। इससे मुनिराज का स्वरूप गहराई से स्पष्ट हुआ है।

भावपाहुड़

एक सौ पैंसठ गाथाओं में निबद्ध इस भावपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने सर्वत्र ही भावशुद्धि पर विशेष बल दिया है। वे कहते हैं - हे आत्मन्! पहले मिथ्यात्वादि आभ्यन्तर दोषों को छोड़कर, भावदोषों से अत्यन्त शुद्ध होकर, बाह्य निर्ग्रन्थ लिंग धारण करना चाहिए।

शुद्धात्मा की भावना से रहित मुनियों द्वारा किया गया बाह्य परिग्रह का त्याग, गिरिकन्दरादि का आवास, ज्ञान, अध्ययन आदि सभी क्रियाएँ निरर्थक हैं। इसलिए हे मुनि! लोक का मनोरंजन करनेवाला मात्र बाह्यवेष ही धारण न

कर, इन्द्रियों की सेना का भंजन कर, विषयों में मत रम, मनरूपी बन्दर को वश में कर, मिथ्यात्व, कषाय व नव नोकषायों को भावशुद्धिपूर्वक छोड़, देव-शास्त्र-गुरु की विनय कर, जिनशास्त्रों को अच्छी तरह समझकर शुद्धभावों की भावना कर; जिससे तुझे क्षुधा-तृषादि वेदना से रहित त्रिभुवन चूड़ामणी सिद्धत्व की प्राप्ति होगी।

ज्ञान का एकाग्र होना ही ध्यान है। ध्यान द्वारा कर्मरूपी वृक्ष दग्ध हो जाता है, जिससे संसाररूपी अंकुर उत्पन्न नहीं होता है, अतः भावश्रमण तो सुखों को प्राप्त कर तीर्थंकर व गणधर आदि पदों को प्राप्त करते हैं; पर द्रव्यश्रमण दुःखों को ही भोगता है। अतः गुण-दोषों को जानकर तुम भाव सहित संयमी बनो।

इसप्रकार हम देखते हैं कि भावपाहुड़ में भावलिंग सहित द्रव्यलिंग धारण करने की प्रेरणा दी गई है। प्रकारान्तर से सम्यग्दर्शन सहित व्रत धारण करने का उपदेश दिया गया है।

मोक्षपाहुड़

एक सौ छह गाथाओं में निबद्ध इस पाहुड़ में आत्मा की अनन्त सुखस्वरूप दशा मोक्ष एवं उसकी प्राप्ति के उपायों का निरूपण है। इसके आरंभ में ही आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा एवं परमात्मा - इन तीन भेदों का निरूपण करते हुए बताया गया है कि बहिरात्मपना हेय है, अन्तरात्मपना उपादेय है और परमात्मपना परम उपादेय है।

आगे बंध और मोक्ष के कारणों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि परपदार्थों में रत आत्मा बंधन को प्राप्त होता है और परपदार्थों से विरत आत्मा मुक्ति को प्राप्त करता है। इसप्रकार स्वद्रव्य से सुगति और परद्रव्य से दुर्गति होती है - ऐसा जानकर हे आत्मन्! स्वद्रव्य में रति और परद्रव्य में विरति करो।

आत्मस्वभाव से भिन्न स्त्री-पुत्रादिक, धन-धान्यादिक सभी चेतन-अचेतन पदार्थ 'परद्रव्य' हैं और इनसे भिन्न ज्ञानशरीरी, अविनाशी निज भगवान आत्मा 'स्वद्रव्य' है। जो मुनि परद्रव्यों से परान्मुख होकर स्वद्रव्य का ध्यान करते हैं, वे निर्वाण को प्राप्त करते हैं। अतः जो व्यक्ति संसाररूपी महार्णव से पार होना चाहते हैं, उन्हें अपने शुद्धात्मा का ध्यान करना चाहिए।

इसप्रकार मुनिधर्म का विस्तृत वर्णन कर श्रावकधर्म की चर्चा करते हुए सबसे पहले निर्मल सम्यग्दर्शन को धारण करने की प्रेरणा देते हैं। कहते हैं कि अधिक कहने से क्या लाभ है? मात्र इतना जान लो कि आज तक भूतकाल में जितने सिद्ध हुए हैं और भविष्यकाल में जितने सिद्ध होंगें, वह सर्व सम्यग्दर्शन का ही माहात्म्य है।

इसप्रकार इस अधिकार में मोक्ष और मोक्षमार्ग की चर्चा करते हुए स्वद्रव्य में रति करने का उपदेश दिया गया है तथा तत्त्वरुचि को सम्यग्दर्शन, तत्त्वग्रहण को सम्यग्ज्ञान एवं पुण्य-पाप के परिहार को सम्यक्चारित्र कहा गया है। अन्त में एकमात्र निज भगवान आत्मा की ही शरण में जाने की पावन प्रेरणा दी गई है।

लिंगपाहुड़

बाईस गाथाओं के इस लिंगपाहुड़ में जिनलिंग का स्वरूप स्पष्ट करते हुए जिनलिंग धारण करनेवालों को अपने आचरण और भावों की संभाल के प्रति सतर्क किया गया है।

आगे चलकर अनेक गाथाओं में बड़े ही कठोर शब्दों में कहा गया है कि पाप से मोहित है बुद्धि जिनकी, ऐसे कुछ लोग जिनलिंग को धारण करके उसकी हँसी कराते हैं। निर्ग्रंथ लिंग धारण करके भी जो साधु परिग्रह का संग्रह करते हैं, उसकी रक्षा करते हैं, उसका चिंतवन करते हैं; वे नग्न होकर भी सच्चे श्रमण नहीं हैं, अज्ञानी हैं, पशु हैं।

शीलपाहुड़

चालीस गाथाओं में निबद्ध इस शीलपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को ही शील कहा है तथा इनकी एकता को मोक्षमार्ग बतलाया है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण अष्टपाहुड़ श्रमणों में समागत या संभावित शिथिलाचार के विरुद्ध एक समर्थ आचार्य का सशक्त अध्यादेश है, जिसमें सम्यग्दर्शन पर तो सर्वाधिक बल दिया गया है, साथ में श्रमणों के संयमाचरण के निरतिचार पालन पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, श्रमणों को पग-पग पर सतर्क किया गया है।

आचार्य कुन्दकुन्द के हम सभी अनुयायियों का यह पावन कर्तव्य है कि उनके द्वारा निर्देशित मार्ग पर हम स्वयं तो चलें ही, जगत को भी उनके द्वारा प्रतिपादित सन्मार्ग से परिचित करायें, चलने की पावन प्रेरणा दें - इसी मंगल कामना के साथ इस उपक्रम से विराम लेता हूँ। **- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल**

प्रक्षाल पाठ

(दोहा)

भक्तिभाव से हम करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
अरे विकारी भाव का हो जावे प्रक्षाल।। १ ।।

दिन का शुभ आरंभ हो चित्त रहे निर्भ्रान्त[1]।
प्रतिमा के प्रक्षाल से मन हो जावे शान्त।। २ ।।

(हरिगीतिका)

यद्यपि इस काल में अरहंत जिन उपलब्ध ना।
किन्तु हमारे भाग्य से जिनबिंब तो उपलब्ध हैं।।
जिनबिंब का प्रक्षाल पूजन और दर्शन भाव से।
जो भाग्यशाली करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।। ३ ।।

वे भाग्यशाली भव्य निज हित कार्य में नित रत रहें।
आपके गुणगान वे नित निरन्तर करते रहें।।
निज आतमा को जानकर वे शीघ्र ही भव पार हों।
निज आतमा का ध्यान धर वे भवजलधि से पार हों।। ४ ।।

जिसतरह समव-शरण में अरहंत जिन विद्यमान हैं।
और उनका इस जगत में उच्चतम स्थान है।।
व्यवहार होता जिसतरह का अरे उनके सामने।
बस उसतरह की विनय हो जिनमूर्तियों के सामने।। ५ ।।

---

१. जिसमें कोई सन्देह या भ्रम न हो।

यदि मूर्तियाँ हों प्रतिष्ठित स्थापना निक्षेप से।
अरहंत सम ही पूज्य हैं जिनमार्ग में व्यवहार से।।
अरे कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिंब जितने लोक में।
वे पूज्य हैं शत इन्द्र कर जिनशास्त्र के आलोक में।। ६ ।।

अति विनयपूर्वक बिंब का प्रक्षाल होना चाहिये।
अर दिवस में प्रत्येक दिन इकबार होना चाहिये।।
स्वस्थ तन-मन स्वच्छ पट अर सावधानी पूर्वक।
सद्भाव से ही पुरुष को प्रक्षाल करना चाहिये।। ७ ।।

प्रत्येक नर-नारी अरे पूजन करे प्रत्येक दिन।
प्रक्षाल तो बस एक जन इकबार ही दिन में करे।।
प्रक्षाल पूजन अंग ना प्रत्येक को अनिवार्य ना।
प्रक्षाल तो इक बिंब का इक बार होना चाहिये।। ८ ।।

छवि वीतरागी शान्त मुद्रा कही है जिनदेव की।
जिनमूर्ति की भी शान्त मुद्रा वीतरागी छवि कही।।
'जिनमूर्तियाँ हों मुस्कुराती' - कभी हो सकता नहीं।
और हंसना वीतरागी भाव हो सकता नहीं।। ९ ।।

जब वीतरागी जिनवरों का न्हवन हो सकता नहीं।
एवं दिगम्बर मुनिवरों का न्हवन हो सकता नहीं।।
जब मुनिवरों के मूलगुण में एक गुण अस्नान है।
तब प्रतिष्ठित मूर्तियों का न्हवन होवे किस तरह?।। १० ।।

बस इसलिये जिनमूर्तियों को स्वच्छ रखने के लिये।
और अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये।।
अरे प्रासुक नीर से प्रक्षाल करना चाहिये।
न्हवन ना अभिषेक ना प्रक्षाल होना चाहिये।। ११ ।।

जिनबिंब का स्पर्श महिला वर्ग कर सकता नहीं।
जिनबिंब का प्रक्षाल महिला वर्ग कर सकता नहीं।।
दिगम्बर जिनबिंब से सम्पूर्ण महिला वर्ग को।
एक सीमा तक सुनिश्चित दूर रहना चाहिये।। १२ ।।

क्योंकि ये जिनबिंब जिनवरदेव के प्रतिबिंब हैं।
वीतरागी सर्वज्ञानी देव के ही बिंब हैं।।
उन बिंब का जिनबिंब का अति हर्ष से उल्लास से।
प्रक्षाल सब जन कर रहे अत्यन्त निर्मल भाव से।। १३ ।।

जिनबिंब का प्रक्षाल जो जन करें निर्मलभाव से।
और पूजन करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।।
जिन शास्त्र का स्वाध्याय एवं रहें संयमभाव से।
वे भव्यजन भवपार होंगे स्वयं के आधार से।। १४ ।।

(दोहा)

महाभाग्य हमने किया जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
चरणों में जिनबिंब के सदा नवावें भाल।। १५ ।।

भक्तिभाव से जो करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
निज आतम का ध्यान धर वे होवें भव पार।। १६ ।।

विनय पाठ

(दोहा)

अरहंतों को नमन कर नमूँ सिद्ध भगवान।
आचारज उवझाय अर सर्व साधु गुणखान।। १ ।।

मोक्ष मोक्ष के मार्ग में विद्यमान जो जीव।
यथायोग्य नम कर प्रभो वन्दन करूँ सदीव।। २ ।।

चौबीसों जिनराज की दिव्यध्वनि अनुसार।
ज्ञानिजनों ने जो लिखी वाणी विविधप्रकार।। ३ ।।

नय–प्रमाण से विविधविध कही तत्त्व की बात।
भविकजनों के लिये जो एकमात्र आधार।। ४ ।।

सब द्रव्यों के सभी गुण अर सामान्य–विशेष।
आज सभी को सहज ही हैं उपलब्ध अशेष।। ५ ।।

जिनवाणी उपलब्ध है उसे बतावनहार।
बहुत अधिक दुर्लभ नहीं उसके जाननहार।। ६ ।।

मोहनींद में जो पड़े नहीं कोई आधार।
साधर्मीजन कम नहीं उन्हें जगावनहार।। ७ ।।

सारा जग बेचेत है मोहनींद के द्वार।
किन्तु हमें उपलब्ध हैं मार्ग बतावनहार।। ८ ।।

महाभाग्य से प्राप्त हो देव–गुरु संयोग।
पर जिनवाणी मात की शरण सहज संयोग।। ९ ।।

उसके अध्ययन मनन से चिन्तन से निजतत्व।
जाना जाता सहज ही होता है सम्यक्त्व।। १० ।।

जिनवाणी के मर्म को अरे जानने योग्य।
ज्ञान प्रगट पर्याय में होवे सहज संयोग[१]।। ११ ।।

और कषायें मन्द हों भाव रहें निष्काम।
एक आतमा में लगे छोड़ हजारों काम[२]।। १२ ।।

देव–गुरु संयोग या जिनवाणी के योग।
तत्व श्रवण में मन लगे और न मन में रोग[३]।। १३ ।।

अरे क्षयोपशम विशुद्धि और देशना लब्धि।
जिसके ये तीनों बने उसे तत्त्व उपलब्धि।। १४ ।।

आतम में अति अधिक रुचि जब होवे सर्वांग।
विशेष तरह की योग्यता वह लब्धि प्रायोग्य।। १५ ।।

आतम का उपयोग जब आतम में रमजाय।
करणलब्धि है आतमा आतम माँहि समाय।। १६ ।।

करणलब्धि के अन्त में आतम अनुभव होय।
सम्यग्दर्शन प्राप्त हो मन रोमांचित होय।। १७ ।।

तीर्थंकर चौबीस ही हमें जगावनहार।
जागें आतम में लगें हो जावें भव पार।। १८ ।।

देव–शास्त्र–गुरु की कृपा से कटता संसार।
नमन करूँ इन सभी को भगवन् बारंबार।। १९ ।।

अरे हमारा आतमा आतम में रम जाय।
अन्य न कोई चाह मन आतम माहि समाय।। २० ।।

---

१. क्षयोपशम लब्धि २. विशुद्धि लब्धि ३. देशना लब्धि

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

(वीर)

अरहंतों को सब सिद्धों को आचार्यों को करूँ प्रणाम।
उपाध्याय एवं त्रिलोक के सर्व साधुओं को अभिराम।। १ ।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पांजलि क्षिपामि।

अरे चार मंगल हैं जग में अर्हत सिद्ध साहु मंगल।
और केवली कथित जगत में होता परम धरम मंगल।। २ ।।

और चार ही लोकोत्तम अर्हत सिद्ध साहु उत्तम।
और केवली कथित जगत में होता परम धरम उत्तम।। ३ ।।

अरे चार की शरणा जाऊँ अर्हत सिद्ध साहु शरणा।
और केवली कथित लोक में जाऊँ परम धरम शरणा।। ४ ।।

(हरिगीत)

परमेष्ठी सम शुद्धात्मा भी शरण है इस लोक में।
है परम मंगल परम उत्तम शरण भी इस लोक में।।
व्यवहार से परमेष्ठी परमार्थ से शुद्धात्मा।
की शरण में नित हम रहें जिनमार्ग के आलोक में।। ५ ।।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा पुष्पांजलि क्षिपामि।

मंगल विधान

(वीर)

हो अपवित्र-पवित्र और सुस्थित हो अथवा दुःस्थित हो।
सब पापों से छूट जाय वह नमोकार को ध्यावे जो।। १ ।।

हो अपवित्र-पवित्र अधिक क्या किसी अवस्था में भी हो।
अन्दर-बाहर से पवित्र निज परमातम को ध्यावे जो।। २ ।।

अपराजित यह मंत्र सभी विघ्नों का परमविनाशक है।
सभी मंगलों में मंगल यह पावन पहला मंगल है।। ३ ।।

सब पापों का नाशक है यह महामंत्र मंगलमय है।
सभी मंगलों में यह अद्‌भुत पावन पहला मंगल है।। ४ ।।

'अर्हं' ये अक्षर परमेष्ठी परमब्रह्म के वाचक हैं।
सिद्धचक्र के बीज मनोहर नमस्कार हम करते हैं।। ५ ।।

अष्टकर्म से रहित मोक्षलक्ष्मी के सुखद निकेतन हैं।
सम्यक्त्वादि अष्टगुणों से सहित सिद्ध को नमते हैं।। ६ ।।

जिनवर की स्तुति करने से विघ्न विलय हो जाते हैं।
भूत डाकिनी एवं विषभय सभी विघ्न टर जाते हैं।। ७ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

(वीर)

जल चन्दन अक्षत सुमन चरु, अर दीप धूप फल द्रव्यमयी।
अर्घ्य समर्पण करता हूँ मैं श्रीजिनवर आनन्दमयी।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामेभ्योर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

(वीर)

अनन्तचतुष्टय पद के धारी स्याद्‌वाद के नायक की।
पूजन करता नमस्कार कर तीन लोक परमेश्वर की।।
मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि उनके सत्कर्मों के हेतु।
मेरे द्वारा कही जा रही यह जैनेन्द्रयज्ञविधि सेतु।। १ ।।

जिनपुंगव त्रैलोक्य गुरु की स्वस्ति हो कल्याणमयी।
जिनका रे सुस्थित स्वभाव महिमामय है कल्याणमयी।।
सहज प्रकाशमयी दृगज्योति मंगल मंगलदाता है।
स्वस्ति मंगल अद्भुत वैभव अति आनन्द प्रदाता है।। २ ।।

रे स्वभाव–परभाव सभी को करे प्रकाशित निर्मल ज्ञान।
अमृतमय वह ज्ञान मनोहर उछले अन्तर महिमावान।।
तीन लोक अर तीनकाल में विस्तृत है अति व्यापक है।
तीन लोक एवं त्रिकाल की पर्यायों का ज्ञायक है।। ३ ।।

यथायोग्य है द्रव्य शुद्धि पर भावशुद्धि पूरी चाहूँ।
अरे विविध आलंबन लेकर शुद्धभाव को अपनाऊँ।।
जो सचमुच भूतार्थ पुरुष हैं पावन हैं अतिपावन हैं।
उनकी पूजा करूँ ध्यान से जो अति ही मनभावन हैं।। ४ ।।

जिनकी केवलज्ञान ज्योति में सभी भाव भासित होते।
वे अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम परम भाव भावित होते।।
उनकी केवलज्ञान बह्नि में मैं अपने पूरे मन से।
सभी पुण्य अर्पित करता हूँ निकला चाहूँ भव वन से।। ५ ।।

ॐ यज्ञप्रतिज्ञायै प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

स्वस्ति मंगल पाठ

(चौपाई)

स्वस्ति श्री श्री ऋषभ जिनेश, स्वस्ति करें जिनवर अजितेश।
संभव करें असंभव द्वेष, अभिनन्दन दुख हरें अशेष।। १ ।।
सुमति प्रदाता सुमति जिनेश, पद्मप्रभ जिनवर पद्मेश।
जय सुपार्श्व पारस सम जान, चन्द्रप्रभ जिन चन्द्र समान।। २ ।।

सुविधिनाथ विधिनाशनहार, शीतल शीतलता दातार।
जय श्रेयांश श्रेय करतार, वासुपूज्य शिवसुख दातार।। ३ ।।

विमल विमल जीवन दातार, श्री अनन्त आनन्द अपार।
धर्म कहें संसार असार, शान्ति अनन्त शान्ति दातार।। ४ ।।

कुन्थु कुन्थु के रक्षणहार, अरजिन आनन्द के अवतार।
जीता है मन मल्लि जिनेश, मुनिसुव्रत व्रत धरें अशेष।। ५ ।।

नमि चरणों में नमें नरेश, जीता मन्मथ नेमि जिनेश।
पारस पारस से दातार, वीर अहिंसा के अवतार।। ६ ।।

(दोहा)

चौबीसों जिनराज ही मंगल मंगल हेतु।
स्वस्ति स्वरूप विराजहीं सबको मंगल देतु।। ७ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

(हरिगीत)

ज्ञानी तपस्वी मुनिवरों को ऋद्धियाँ उपलब्ध हों।
पर ऋद्धियों की सिद्धियों पर रंच न वे मुग्ध हों।।
वे तो निरन्तर लीन रहते आतमा के ज्ञान में।
आतमा के चिन्तवन निज आतमा के ध्यान में।। १ ।।

अरे चौसठ ऋद्धियों में प्रथम केवलज्ञान है।
दूसरी है मनःपर्यय तृतीय अवधीज्ञान है।।
इत्यादि चौसठ ऋद्धियाँ सब ज्ञान का विस्तार है।
रे ज्ञान के विस्तार का न आर है न पार है।। २ ।।

अन्य लौकिक सिद्धियाँ भी ऋद्धियों से प्राप्त हो।
पर मुनिवरों को उन सभी से नहीं कोई राग हो।।
वे तो स्वयं में जम गये वे तो स्वयं में रम गये।
सारे जगत से विमुख हो सद्ज्ञान में परिणम गये।। ३ ।।

आतमा के चिन्तवन में आतमा के ज्ञान में।
वे तो निरन्तर लगे रहते आतमा के ध्यान में।।
कैसे कहें उन मुनिवरों से तुम बताओ हे प्रभो।
निज आतमा को छोड़कर हे प्रभो हम पर ध्यान दो।। ४ ।।

नहीं कोई किसी का कुछ भी करे इस लोक में।
यह जानते हैं सभी आगम ज्ञान के आलोक में।।
सब जानते हैं समझते व्यवहार में यों बह रहे।
उन ऋद्धिधारी ऋषिवरों से प्रभो फिर भी कह रहे।। ५ ।।

रे ऋद्धिधारी मुनिवरो! कल्याण सब जग का करो।
अज्ञान मोहित जगत की दुर्गति मुनिवर परिहरो।।
यह जगत मिथ्यामार्ग तज सन्मार्ग में वर्तन करे।
जिनशास्त्र का स्वाध्याय कर निजज्ञान का मार्जन करे।। ६ ।।

अन्याय और अनीति छोड़े अभक्ष्य भक्षण न करे।
न्याय एवं नीति से सन्मार्ग पर आगे बढ़े।।
होवे अहिंसक आचरण आहार और विहार में।
सावधानी रखें हम व्यवहार में व्यापार में।। ७ ।।

(दोहा)

सभी संत मंगलमयी मंगल के आधार।
मल गाले मंगल करें करें मंगलाचार।। ८ ।।
सभी ऋद्धियों के धनी सभी दिगम्बर संत।
और कछु नहिं चाहिये चाहे भव का अंत।। ९ ।।

इति परमर्षि स्वस्तिमंगलविधानं पुष्पांजलि क्षिपेत्)

-●-

देव–शास्त्र–गुरु पूजन

(दोहा)

शुद्धब्रह्म परमात्मा, शब्दब्रह्म जिनवाणि।
शुद्धातम साधकदशा, नमौं जोड़ जुगपाणि।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीर)

आशा की प्यास बुझाने को, अबतक मृगतृष्णा में भटका।
जल समझ विषय–विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका।।
लख सौम्यदृष्टि तेरी प्रभुवर, समता–रस पीने आया हूँ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इसको लौटाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया।।
संसार–ताप से तप्त हृदय, सन्ताप मिटाने आया हूँ।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिमान किया अबतक जड़ पर, अक्षयनिधि को ना पहचाना।
मैं जड़ का हूँ जड़ मेरा है, यह सोच बना था मस्ताना।।
क्षत में विश्वास किया अबतक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षयनिधि तुम को पहिचाना।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दिन–रात वासना में रहकर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना।
पुरुषत्व गँवाया पर प्रभुवर, उसके छल को ना पहिचाना।।
माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बाँध लिया।
उसका प्रमाण यह पुष्प–बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटानी चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी।।
मिष्टान्न अनेक बनाये थे, दिन–रात भखे न मिटी प्रभुवर।
अब संयम–भाव जगाने को, लाया हूँ ये सब थाली भर।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पहले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग में उजियाला।
उससे न हुआ कुछ तब युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला।।
प्रभु भेद–ज्ञान की आँख न थी, क्या कर सकती थी यह ज्वाला।
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ–कर्म कमाऊँ सुख होगा, अबतक मैंने यह माना था।
पाप कर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था।।
किन्तु समझ कर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूँ।
लेकर दशांग यह धूप, कर्म की धूम उड़ाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्योः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को अमृतफल जाना, विषयों में निश–दिन मस्त रहा।
उनके संग्रह में हे प्रभुवर! मैं व्यस्त–त्रस्त–अभ्यस्त रहा।।
शुद्धात्मप्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूँ।
प्रभु सरस सुवासित ये जड़फल, मैं तुम्हें चढ़ाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

समयसार जिनदेव हैं, जिन–प्रवचन जिनवाणि।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि।।

(वीरछन्द)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अबतक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत–कृत, इतना ना मैंने पहिचाना।।
प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्त्ता अब तक, सत् का न प्रभो सम्मान किया।।
भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद–नय, अनेकान्त–मय, समयसार समझाया है।।
उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गँवाया है।
शुद्धात्म–रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।

मैं समझ न पाया था अबतक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्त्व निकलते हैं।।
राग धर्ममय धर्म रागमय, अबतक ऐसा जाना था।
शुभ-कर्म कमाते सुख होगा, बस अबतक ऐसा माना था।।
पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।
राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा।।
वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हम को जो दिखलाती है।।
उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है।।
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु सम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रकट हो रहा अन्तर्मन।।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानी-ध्यानी-समरससानी, द्वादश विधि तप नित करते जो।।
चलते-फिरते सिद्धों-से गुरु चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं।।
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्या समरससानी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(दोहा)

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की खान हैं, मैं वंदौं धरि ध्यान।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अष्टपाहुड़ महामण्डल विधान

मंगलाचरण

(रोला)

कुन्दकुन्द आचार्यदेव की यह संरचना।
मुनीधर्म के अनुशासन की अद्भुत रचना।।
मुनीधर्म का सम्यक् रूप बताया इसमें।
और आतमा का स्वरूप समझाया इसमें ।। १।।

अरे दिगम्बर सन्तों की चर्या समझाई।
शिथिल आचरण के विरुद्ध आवाज उठाई।।
सन्तों को जिनदर्शन कह महिमा समझाई।
जगह–जगह पर उनकी ही महिमा बतलाई ।। २।।

मुनीधर्म का सम्यक्रूप आज तक भाई।
रहा सुरक्षित जानों इस रचना के कारण।।
और आज भी इसकी अति आवश्यकता है।
जो भी रूप सुरक्षित है वह इसके कारण।। ३।।

सर्वश्रेष्ठ आचार्य और उनकी यह रचना।
सारे जग में अमर रहे यह युगों–युगों तक।।
परम दिगम्बर सन्तों की पथदर्शक यह कृति।
सन्तों को सन्मार्ग दिखावे युगों–युगों तक ।। ४।।

(दोहा)

अष्टपाहुड़ों में गुंथा पाहुड़ ग्रन्थ महान।
भक्ति भाव से करें हम पूजन और विधान।। ५ ।।

१

अष्टपाहुड़ पूजन

स्थापना

(रोला)

दर्शन–सूत्र–चरित्र–बोधपाहुड़ को जानो।
भाव–मोक्ष–लिंग–शील अष्टपाहुड़ पहिचानो।।
मुनीधर्म का जो स्वरूप इनमें समझाया।
सभी दिगम्बर सन्तों ने उसको अपनाया ।। १।।

इनके ही अनुसार आचरण जिन सन्तों का।
वे ही सच्चे सन्त अन्त पाते हैं भव का।।
ये सब पाहुड़ग्रंथ अंश हैं जिनवाणी के।
इनकी पूजन करूँ हृदय से अर वाणी से ।। २।।

(दोहा)

पूजन पाहुड़ग्रंथ की धरकर अति उत्साह।
भक्तिभाव से हम करें नमकर मन–वच–काय।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागम! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागम!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागम!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।
(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रेखता)

जल

अरे मल शोधक निर्मल नीर बुझाता है प्यासों की प्यास।
पिया भरपूर किन्तु हे नाथ! बुझी ना इस आतम की प्यास।।
अष्टपाहुड़ में पग–पग पर दिगम्बर सन्तों का गुणगान।
किया है, सन्तों का आदर्श अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागमाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन

यद्यपि चन्दन हरता ताप जगत में कहते हैं सब लोग।
किन्तु भवताप हरे ना रंच अरे ऐसा ही है संयोग।।
अष्टपाहुड़ में पग-पग पर दिगम्बर सन्तों का गुणगान।
किया है, सन्तों का आदर्श अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

तन्दुलों को अक्षत हम कहें किन्तु वे नश्वरता के धाम।
अरे ये तन्दुल अक्षत नहीं असल में अक्षत आतमराम।।
अष्टपाहुड़ में पग-पग पर दिगम्बर सन्तों का गुणगान।
किया है, सन्तों का आदर्श अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

भले हों कल्पवृक्ष के पुष्प किन्तु उनमें न सुख की गंध।
आतमा ही है सुख का कंद यद्यपि वह है अरस-अगंध।।
अष्टपाहुड़ में पग-पग पर दिगम्बर सन्तों का गुणगान।
किया है, सन्तों का आदर्श अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

यद्यपि क्षुधा वेदना[1] हरें जगत में सभी सरस नैवेद्य।
किन्तु यह सभी क्षणिक संयोग न इनसे मिटे क्षुधा का रोग[2]।।
अष्टपाहुड़ में पग-पग पर दिगम्बर सन्तों का गुणगान।
किया है, सन्तों का आदर्श अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

१. पीड़ा २. बीमारी

दीप

यद्यपि तमहर दीपक अरे नहीं अज्ञान तिमिर को हरे।
किन्तु यह ज्ञान दीप जग में अरे अज्ञान तिमिर को हरे।।
अष्टपाहुड़ में पग–पग पर दिगम्बर सन्तों का गुणगान।
किया है, सन्तों का आदर्श अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागमाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

यद्यपि यह मनहारी धूप वायु मंडल का शोधन करे।
किन्तु आतम के शोधन में नहीं करती है कुछ भी अरे।।
अष्टपाहुड़ में पग–पग पर दिगम्बर सन्तों का गुणगान।
किया है, सन्तों का आदर्श अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

है सफल आतमा वही जिसे दुखों से मुक्ती मिले।
चतुर्गति में घूमे जो जीव उन्हें दुख से मुक्ती न मिले।।
अष्टपाहुड़ में पग–पग पर दिगम्बर सन्तों का गुणगान।
किया है, सन्तों का आदर्श अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

जगत में मूल्यवान जो अर्थ उन्हीं से मिलकर बनता अर्घ्य।
किन्तु यदि आतम सुख न मिले व्यर्थ ही हैं सब अर्घ्य–अनर्घ्य।।
अष्टपाहुड़ में पग–पग पर दिगम्बर सन्तों का गुणगान।
किया है, सन्तों का आदर्श अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

पूरण भक्तिभाव से पूजन हुई अनूप।
अब जयमाला में सुनो प्रतिपादन का रूप।। १ ।।
अठपाहुड़ में जो कहा वस्तुतत्त्व संक्षेप।
अब जयमाला में कहें उसका अति संक्षेप।। २ ।।

(रोला)

सबसे पहले दर्शनपाहुड़ में समझाया।
अरे धर्म का मूल कहा है सम्यग्दर्शन।।
सम्यग्दर्शन मोक्षमहल की पहली सीढ़ी।
सम्यग्दर्शन बिन भटकें पीढ़ी दर पीढ़ी[१]।। ३ ।।

अरे करोड़ों वर्ष तपे तप फिर भी भाई।
यदि न हो सम्यक्त्व नहीं मुक्ती मिलती है।।
अरे भटकते रहें निरन्तर वे भव-भव में।
करें उपाय अनेक नहीं मिलती भव मुक्ती ।। ४ ।।

अरे सूत्रपाहुड़ में यह स्पष्ट किया है।
आगम है आधार अहिंसक सदाचरण का।
अरे अनन्ते जीव-जन्तु हैं कहाँ-कहाँ पर।
यह सब आगम से ही तो जाना जाता है ।। ५ ।।

जो आँखों से नहीं दिखें वे जीव अनन्ते।
केवल आगम से ही तो जाने जाते हैं।।
मुनिराजों का सभी आचरण शास्त्र विहित है।
इसीलिये श्रमणों को कहते आगम चक्षु ।। ६ ।।

---

१. भव-भव में।

चारितपाहुड़ में कहते हैं कुन्दकुन्द मुनि।
चारित्र ही साक्षात् धर्म है जिनशासन में।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित चारित्र जगत में।
एकमात्र कारण होता है मुक्तिमार्ग में।। ७ ।।

चारित के दो भेद कहे चारितपाहुड़ में।
वे सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण हैं।।
इससे होता सिद्ध कि चौथे गुणस्थान से।
होता है चारित्र ज्ञानियों के जीवन में।। ८ ।।

अरे बोधपाहुड़ में ग्यारह थान बताये।
अरे आयतन और चैत्यगृह आदि गिनाये।।
और सभी को एकमात्र मुनिराज बताया।
मुनीराज में ही इन सबको घटित किया है।। ९ ।।

अरे भावपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
भावलिंग पर ही तो पूरा जोर दिया है।।
भावलिंग बिन द्रव्य लिंग को व्यर्थ कहा है।
भावलिंग को ही मुक्ति का मार्ग बताया।। १० ।।

भावलिंग के साथ नियम से होता ही है।
द्रव्यलिंग भी, अतःएव वह उपयोगी है।।
किन्तु मुक्ति तो भावलिंग से ही होती है।
जिनवाणी का कथन सुनिश्चित ऐसा जानो।। ११ ।।

द्रव्यकर्म से भावकर्म से नोकर्मों से।
अरे मुक्त हो जाना ही तो मोक्ष कहा है।।
और त्रिकाली ध्रुव आतम में अपनापन अर।
अरे उसी में जमना-रमना मोक्षमार्ग है।। १२ ।।

बड़े-बड़े ज्ञानीजन जिसमें जमते-रमते।
वह अपना आतम ही है कारण परमातम।।
उसमें ही तो अपनापन थापित करने से।
अरे स्वयं यह आतम बनता है परमातम।। १३ ।।
अरे लिंगपाहुड़ में अति कठोर भाषा में।
कुन्दकुन्द मुनि शिष्यगणों को समझाते हैं।।
शिथिलाचारी सन्तों की क्या दुर्गति होती।
उसका जो भीवत्स चित्र उनको दिखलाते।। १४ ।।
करुणा करके वे कहते हैं उन लोगों से।
ऐसे शिथिलाचारी तो नरकों में जाते।।
कूकर होते सूकर होते तिर्यग् गति में।
अधिक कहें क्या ऐसे जन निगोद जाते हैं।। १५ ।।
और शीलपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
शील धर्म की परम भक्ति से महिमा गाई।।
अरे शील को सब धर्मों से श्रेष्ठ बताया।
और शील संयमधारी के गुण गाये हैं।। १६ ।।
इसप्रकार आठों पाहुड़ में कहा गया जो।
उसका ही संक्षिप्त कथन यह किया गया है।।
इसे जानकर भविजन अपने को पहिचानें।
अपने में जम जायें और अपने को जानें।। १७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टपाहुड़परमागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

इसप्रकार पाहुड़ सभी सन्मति के दातार।
इनके अध्ययन-मनन से हो आनन्द अपार।। १८ ।।
इस असार संसार में एकमात्र यह सार।
इनकी पूजन भक्ति से पावे भव से पार।। १९ ।।
अष्टपाहुड़ों की हुई यह पूजन इकसाथ।
पृथक-पृथक सबकी करें अर्घ्यावली के साथ।। २० ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

२

दर्शनपाहुड़ पूजन

स्थापना

(रोला)

'यह ही हूँ मैं' – ऐसा जो श्रद्धान स्वयं में।
वह निर्मल श्रद्धान अपन में अपनापन है।।
आतम की अनुभूतिपूर्वक जो होता है।
अपने में अपनापन वह सम्यग्दर्शन है ।। १ ।।

अरे धर्म का मूल जगत में सम्यग्दर्शन।
मुक्तिमहल की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन।।
ज्ञान–चरण का अविनाभावी सम्यग्दर्शन।
भवसागर से पार उतारे सम्यग्दर्शन ।। २ ।।

जिनदर्शन[१] का सार अरे यह सम्यग्दर्शन।
जिनमत का आधार अरे यह सम्यग्दर्शन।।
निज का निज में पूर्ण समर्पण सम्यग्दर्शन।
भवसागर का पार बताया सम्यग्दर्शन ।। ३ ।।

मुक्तिवधु का प्यार कहा यह सम्यग्दर्शन।
शिवजननी का रे दुलार यह सम्यग्दर्शन।।
ज्ञायक में निजभाव कहा है सम्यग्दर्शन।
परमभाव की प्राप्ति कहा है सम्यग्दर्शन ।। ४ ।।

---

१. जिनमत

(दोहा)

सम्यग्दर्शन सार है महिमा अपरंपार ।
भवसागर का पोत यह करता भव से पार ।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागम! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागम!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागम!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् ।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रेखता)

जल

वीरवाणी–सा निर्मल नीर तृषा की क्षणिक मिटावे पीर ।
किन्तु यह सम्यग्दर्शन नीर भेज दे भवसागर के तीर ।।
अरे अनुभव की अनुपम विधि बताई वीतराग जिनराज ।
अरे सम्यग्दर्शन की भेंट हमें दी कुन्दकुन्द मुनिराज ।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागमाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा ।

चन्दन

मलयगिरि का मलयागिर अरे हरे सारे जग का संताप ।
मिटा न सके किन्तु यह मलय जेठ की गर्मी सा भवताप ।।
अरे अनुभव की अनुपम विधि बताई वीतराग जिनराज ।
अरे सम्यग्दर्शन की भेंट हमें दी कुन्दकुन्द मुनिराज ।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा ।

अक्षत

अरे अक्षत अखण्ड अनुपम अतुल अविनाशी आतम सम ।
समर्पित करता हूँ जिनराज मिले मुझको सम्यग्दर्शन ।।
अरे अनुभव की अनुपम विधि बताई वीतराग जिनराज ।
अरे सम्यग्दर्शन की भेंट हमें दी कुन्दकुन्द मुनिराज ।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा ।

पुष्प

सभी के मन को मोहित करे विविध पुष्पों की मधुर सुगंध ।
करे क्या यह सुमनों की गंध आतमा अरस अरूप अगंध ।।
अरे अनुभव की अनुपम विधि बताई वीतराग जिनराज ।
अरे सम्यग्दर्शन की भेंट हमें दी कुन्दकुन्द मुनिराज ।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

विविध विध सरस मधुर नैवेद्य यद्यपि हरें क्षुधा की पीर ।
अरे भव-भव खाये भरपूर आजतक मिटी न भव की पीर ।।
अरे अनुभव की अनुपम विधि बताई वीतराग जिनराज ।
अरे सम्यग्दर्शन की भेंट हमें दी कुन्दकुन्द मुनिराज ।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

चढ़ाये चरणों में हे नाथ! विविध रत्नों के तमहर दीप ।
हृदय का अंधकार न मिटा न प्रगटे रत्नत्रय के दीप ।।
अरे अनुभव की अनुपम विधि बताई वीतराग जिनराज ।
अरे सम्यग्दर्शन की भेंट हमें दी कुन्दकुन्द मुनिराज ।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागमाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

प्रदूषित जल-वायु को विमल सुगन्धित करे दशांगी धूप ।
अरे! यह अबद्ध और अस्पृष्ट आतमा है चिन्मय चिद्रूप ।।
अरे अनुभव की अनुपम विधि बताई वीतराग जिनराज ।
अरे सम्यग्दर्शन की भेंट हमें दी कुन्दकुन्द मुनिराज ।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

अरे रे! पुण्य भाव हम किये और फल पाया है भरपूर ।
किन्तु सम्यग्दर्शन न मिला रहे हम निज आतम से दूर ।।
अरे अनुभव की अनुपम विधि बताई वीतराग जिनराज ।
अरे सम्यग्दर्शन की भेंट हमें दी कुन्दकुन्द मुनिराज ।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

अरे यह अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य समर्पित करता हूँ सानन्द ।
अरे है नहीं कामना अन्य चाहता हूँ अनर्घ्य आनन्द ।।
अरे अनुभव की अनुपम विधि बताई वीतराग जिनराज ।
अरे सम्यग्दर्शन की भेंट हमें दी कुन्दकुन्द मुनिराज ।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़परमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

अर्घ्यावली

।। दर्शनपाहुड़ ।।

(दोहा)

दर्शनपाहुड़ में कहा दर्शन का सद्रूप।
जिनमत का आधार यह यह है आत्मस्वरूप।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(इस विधान में सर्वत्र आचार्य कुन्दकुन्ददेव की गाथाओं का डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कृत पद्यानुवाद दिया गया है।)

अब, आचार्य कुन्दकुन्द विरचित दर्शनपाहुड़ की मूल गाथायें प्रारम्भ होती हैं; सर्वप्रथम मंगलाचरण की गाथा में वीतरागी सर्वज्ञ भगवान ऋषभदेव और भगवान वर्द्धमान को नमस्कार करके दर्शनपाहुड़ शास्त्र लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(हरिगीत)

कर नमन जिनवर वृषभ एवं वीर श्री वर्द्धमान को।
संक्षिप्त दिग्दर्शन यथाक्रम करूँ दर्शनमार्ग का।। १ ।।

ॐ ह्रीं मंगलस्वरूप श्रीवृषभादिवर्द्धमानान्तेभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १ ।।

अब, धर्म का मूल दर्शन है – ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

सद्धर्म का है मूल दर्शन जिनवरेन्द्रों ने कहा।
हे कानवालो सुनो ! दर्शनहीन वंदन योग्य ना।। २ ।।

ॐ ह्रीं धर्ममूलदर्शननिरूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २ ।।

अब, सम्यग्दर्शन के बिना निर्वाण नहीं होता, यह बतलाते हैं –

(हरिगीत)

दृगभ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं उनको कभी निर्वाण ना।
हों सिद्ध चारित्रभ्रष्ट पर दृगभ्रष्ट को निर्वाण ना।। ३ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाभावे मुक्तिनिषेधक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३ ।।

अब, सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट अनेक शास्त्रों को जानने पर भी संसार में भटकते हैं, यह बताते हैं – (हरिगीत)

जो जानते हों शास्त्र सब पर भ्रष्ट हों सम्यक्त्व से।
घूमें सदा संसार में आराधना से रहित वे।। ४ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाभावे शास्त्रज्ञाननिरर्थकत्वप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ४ ।।

(गाथा)

काऊण णमुक्कारं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स।
दंसमणग्गं वोच्छामि जहाकम्मं समासेणं।। १ ।।
दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो।। २ ।।
दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति।। ३ ।।
सम्मत्तरयणभट्ठा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव।। ४ ।।

अब, सम्यक्दर्शन से रहित तप भी लाभकारी नहीं, ऐसा बताते हैं –

(हरिगीत)

यद्यपि करें वे उग्रतप शत–सहस–कोटि वर्ष तक।
पर रत्नत्रय पावें नहीं सम्यक्त्व विरहित साधु सब।। ५।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाभावे तपनिरर्थकत्वप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५।।

अब, सम्यक्त्व सहित सारी प्रवृत्ति सफल है, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान बल अर वीर्य से वर्द्धमान जो।
वे शीघ्र ही सर्वज्ञ हों, कलिकलुसकल्मस रहित जो।। ६ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्व–सफलत्वप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६।।

अब, सम्यक्दर्शनरूपी जल आत्मा को कर्मरज नहीं लगने देता है, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

सम्यक्त्व की जलधार जिनके नित्य बहती हृदय में।
वे कर्मरज से ना बंधे पहले बंधे भी नष्ट हों।। ७ ।।

ॐ ह्रीं कर्मविनाशक–सम्यक्त्वप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७।।

अब, रत्नत्रय से स्वयं भ्रष्ट अन्य को भी भ्रष्ट करते हैं, ऐसा कहते हैं –

(गाथा)

सम्मत्तविरहिया णं सुट्ठु वि उग्गं तवं चरंता णं।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं।। ५ ।।
सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया वरणाणी होंति अइरेण।। ६ ।।
सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।
कम्मं वालुयवरणं बन्धुच्चिय णासए तस्स।। ७।।

(हरिगीत)

जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं चारित्र से भी भ्रष्ट हैं।
वे भ्रष्ट करते अन्य को वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं।। ८ ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयभ्रष्टजीवनिरूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८ ।।

अब, भ्रष्ट पुरुष धर्मात्मा पुरुषों को दोष लगाकर भ्रष्ट बतलाते हैं, ऐसा कहते हैं -

(हरिगीत)

तप शील संयम व्रत नियम अर योग गुण से युक्त हों।
फिर भी उन्हें वे दोष दें जो स्वयं दर्शन भ्रष्ट हों।। ९ ।।

ॐ ह्रीं दर्शनभ्रष्टैः सम्यग्दृष्टिणां दोषारोपणप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९ ।।

अब, दृष्टान्तपूर्वक मोक्षमार्ग का मूल जिनदर्शन है, ऐसा कहते हैं -

(हरिगीत)

जिस तरह द्रुम परिवार की वृद्धि न हो जड़ के बिना।
बस उस तरह ना मुक्ति हो जिनमार्ग में दर्शन बिना।। १० ।।
मूल ही है मूल ज्यों शाखादि द्रुम परिवार का।
बस उस तरह ही मुक्तिमग का मूल दर्शन को कहा।। ११ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपूर्वक दर्शनस्यधर्ममूलत्वप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १० ।।

(गाथा)

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।
एदे भट्ठ वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति।। ८ ।।
जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियमजोगगुणधारी।
तस्स य दोस कहंता भग्गा भग्गत्तणं दिति।। ९ ।।
जह मूलम्मि विणट्ठेदुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति।। १० ।।
जह मूलाओ खंधो साहापरिवार बहुगुणो होइ।
तह जिणदंसण मूलो णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स।। ११ ।।

अब,जो स्वयं दर्शन से भ्रष्ट हैं और दर्शन के धारकों से अपनी विनय चाहते हैं, वे दुर्गति प्राप्त करते हैं, ऐसा बताते हैं –

(हरिगीत)

चाहें नमन दृगवन्त से पर स्वयं दर्शनहीन हों।
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी वे भी वचन–पग हीन हों।। १२ ।।

ॐ ह्रीं दर्शनभ्रष्टाणां सम्यग्दृष्टिभिः विनयापेक्षणं दुर्गतिकारणत्वप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११ ।।

अब, कहते हैं कि जो दर्शन से भ्रष्टों के लज्जादि से भी पैरों में पड़ते हैं, वे भी उनके समान ही भ्रष्ट हैं –

(हरिगीत)

जो लाज गारव और भयवश पूजते दृगभ्रष्ट को।
की पाप की अनुमोदना ना बोधि उनको प्राप्त हो।। १३ ।।

ॐ ह्रीं मिथ्यादृष्टिणां विनयेन बोधिदुर्लभत्वप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १२ ।।

अब, कैसे मुनि दर्शन–पूजन योग्य हैं, यह कहते हैं –

(हरिगीत)

त्रैयोग से हों संयमी निर्ग्रन्थ अन्तर–बाह्य से।
त्रिकरण शुध अर पाणिपात्री मुनीन्द्रजन दर्शन कहें।। १४ ।।

ॐ ह्रीं सम्यङ्मुनिस्वरूपप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १३ ।।

(गाथा)

जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं।। १२।।
जे वि पडंति य तेसिं जाणंता लज्जागारवभयेण ।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं।। १३।।
दुविंह पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि।। १४।।

अब, सम्यग्दर्शन से ही कल्याण-अकल्याण होता है, ऐसा कहते हैं -

(हरिगीत)

सम्यक्त्व से हो ज्ञान सम्यक् ज्ञान से सब जानना।
सब जानने से ज्ञान होता श्रेय अर अश्रेय का।। १५ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वादेव श्रेयोऽश्रेयज्ञानप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १४ ।।

अब, कल्याण-अकल्याण को जानने से क्या होता है, सो कहते हैं -

(हरिगीत)

श्रेयाश्रेय के परिज्ञान से दुःशील का परित्याग हो।
अर शील से हो अभ्युदय अर अन्त में निर्वाण हो।। १६ ।।

ॐ ह्रीं श्रेयोऽश्रेयविज्ञानस्य फलप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ..।। १५ ।।

अब, जिनवचनों की महिमा बताते हैं -

(हरिगीत)

जिनवचन अमृत औषधी जरमरणव्याधि के हरण।
अर विषयसुख के विरेचक हैं सर्वदुःख के क्षयकरण।। १७ ।।

ॐ ह्रीं जिनवचनमहिमाप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १६ ।।

अब, जैनदर्शन में कौन-कौन से लिंग (भेष) पूज्य हैं, यह कहते हैं -

(हरिगीत)

एक जिनवर लिंग है उत्कृष्ट श्रावक दूसरा।
अर कोई चौथा है नहीं, पर आर्यिका का तीसरा।। १८ ।।

ॐ ह्रीं जैनदर्शने त्रिविधैव लिंगपूज्यत्वप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। १७ ।।

(गाथा)

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि।। १५।।
सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं।। १६।।
जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं।। १७।।
एगं जिणस्स रूवं बिदियं उक्किट्ठसावयाणं तु ।
अवरट्ठियाणं तइयं चउत्थ पुण लिंगदंसणं णत्थि।। १८।।

अब, निश्चय एवं व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

छह द्रव्य नव तत्त्वार्थ जिनवर देव ने जैसे कहे।
है वही सम्यग्दृष्टि जो उस रूप में ही श्रद्धहै ।। १९ ।।
जीवादि का श्रद्धान ही व्यवहार से सम्यक्त्व है।
पर नियतनय से आत्म का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।। २० ।।

ॐ ह्रीं निश्चय-व्यवहारसम्यक्त्वस्वरूपप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।। १८ ।।

अब, सम्यग्दर्शन की महिमा कहते हैं –

(हरिगीत)

जिनवरकथित सम्यक्त्व यह गुण रतनत्रय में सार है।
सद्भाव से धारण करो यह मोक्ष का सोपान है।। २१ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वमहिमानिरूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।। १९ ।।

अब, श्रद्धान ही सम्यक्त्व है, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

जो शक्य हो वह करें और अशक्य की श्रद्धा करें।
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है इस भाँति सब जिनवर कहें।। २२ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्श्रद्धानमेव सम्यक्त्वनिरूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि..।। २० ।।

(गाथा)

छह दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ।। १९ ।।
जीवादीसद्दहाणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ।। २० ।।
एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स ।। २१ ।।
जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दमाणस्स सम्मत्तं ।। २२ ।।

अब, जो दर्शन ज्ञान चारित्र में स्थित हैं वे वंदन करने योग्य हैं, ऐसा कहते हैं – (हरिगीत)

ज्ञान दर्शन चरण में जो नित्य ही संलग्न हैं।
गणधर करें गुण कथन जिनके वे मुनीजन वंद्य हैं।। २३ ।।

ॐ ह्रीं वन्दनीयमुनिनां स्वरूपनिरूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २१ ।।

अब, जो यथाजातरूप को देखकर मत्सरभाव या गर्व से वन्दना नहीं करते वे मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

सहज जिनवर लिंग लख ना नमें मत्सर भाव से।
बस प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं संयम विरोधी जीव वे।। २४ ।।
अमर वंदित शील मण्डित रूप को भी देखकर।
ना नमें गारब करें जो सम्यक्त्व विरहित जीव वे।। २५ ।।

ॐ ह्रीं मुनिनां प्रति मात्सर्य–गारवभावमिथ्यात्वकारकप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २२ ।।

अब, असंयमी और गुणहीन श्रावक एवं साधु वन्दनीय नहीं हैं, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

असंयमी ना वन्द्य है दृगहीन वस्त्रविहीन भी।
दोनों ही एक समान हैं दोनों ही संयत हैं नहीं।। २६।।

(गाथा)

दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकालसुपसत्था।
एदे दु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं।। २३।।
सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो।। २४।।
अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति।। २५।।
अस्संजदं ण वन्दे वत्थविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णि वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि।। २६।।

ना वंदना हो देह की कुल की नहीं ना जाति की।
कोई करे क्यों वंदना गुणहीन श्रावक-साधु की।। २७ ।।

ॐ ह्रीं असंयमीनां पूज्यत्वाभावप्ररूपक श्री दर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि....।। २३ ।।

अब, संयमी श्रमण को वंदन करते हैं –

(हरिगीत)

गुण शील तप सम्यक्त्व मंडित ब्रह्मचारी श्रमण जो।
शिवगमन तत्पर उन श्रमण को शुद्धमन से नमन हो।। २८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसंयमीश्रमणेभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २४ ।।

अब, कर्मक्षय के कारणभूत तीर्थंकर अरहंतों का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

चौसठ चमर चौंतीस अतिशय सहित जो अरहंत हैं।
वे कर्मक्षय के हेतु सबके हितैषी भगवन्त हैं।। २९।।

ॐ ह्रीं श्रीतीर्थंकरअर्हद्भ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २५ ।।

अब, संयम ही मुक्ति का कारण है, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञान-दर्शन-चरण तप इन चार के संयोग से।
हो संयमित जीवन तभी हो मुक्ति जिनशासन विषैं।। ३० ।।

ॐ ह्रीं संयमस्य मोक्षकारणत्वनिरूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि...।। २६ ।।

(गाथा)

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुतो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ।। २७।।
वंदमि तवसावण्णा सीलं च गुणं च बंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण सुद्धभावेण।। २८।।
चउसट्ठि चमरसहिओ चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो।
अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो।। २९।।
णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो।। ३०।।

अब, ज्ञानादि का उत्तरोत्तर सारपना कहते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञान ही है सार नर का और समकित सार है।
सम्यक्त्व से हो चरण अर चारित्र से निर्वाण है।। ३१ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानादिनां उत्तरोत्तरसारत्वप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि.....।। २७ ।।

अब, चार प्रकार की आराधना को मुक्ति का कारण कहते हैं –

(हरिगीत)

सम्यक्पने परिणमित दर्शन ज्ञान तप अर आचरण।
इन चार के संयोग से हो सिद्ध पद सन्देह ना।। ३२ ।।

ॐ ह्रीं चतुराराधना मोक्षकारणत्वप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि...।। २८ ।।

अब, सम्यक्दर्शन की महिमा और उसका फल बताते हैं –

(हरिगीत)

समकित रतन है पूज्यतम सब ही सुरासुर लोक में।
क्योंकि समकित शुद्ध से कल्याण होता जीव का।। ३३ ।।
प्राप्तकर नरदेह उत्तम कुल सहित यह आतमा।
सम्यक्त्व लह मुक्ति लहे अर अखय आनन्द परिणमे।। ३४ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वमहिमा-फलनिरूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि.....।। २९ ।।

(गाथा)

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं।। ३१ ।।
णाणम्मि दंसणम्मि य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
चउण्हं पि समाजोगे सिद्धा जीवा ण सन्देहो।। ३२ ।।
कल्लाणपरंपरया लहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं।
सम्मद्दंसणरयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए।। ३३ ।।
लद्धूण य मणुयत्तं सहियं तह उत्तमेण गोत्तेण।
लद्धूण य सम्मत्तं अक्खयसोक्खं च मोक्खं च।। ३४ ।।

अब, स्थावर प्रतिमा का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

हजार अठ लक्षण सहित चौंतीस अतिशय युक्त जिन।
विहरें जगत में लोकहित प्रतिमा उसे थावर कहें।। ३५ ।।

ॐ ह्रीं स्थावरप्रतिमास्वरूपप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३० ।।

अब, निर्वाण प्राप्ति की विधि बताते हैं –

(हरिगीत)

द्वादश तपों से युक्त क्षयकर कर्म को विधिपूर्वक।
तज देह जो व्युत्सर्ग युत, निर्वाण पावें वे श्रमण।। ३६ ।।

ॐ ह्रीं निर्वाणक्रमप्ररूपक श्रीदर्शनपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३१ ।।

जयमाला

(दोहा)

ज्ञान और चारित्र का एकमात्र आधार।
मोक्षमार्ग का मूल है सम्यग्दर्शन सार ।। १ ।।

(रोला)

सप्त तत्त्व श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन।
स्व-परभेदविज्ञान कहा है सम्यग्दर्शन ।।
सच्चे देव-शास्त्र-गुरु श्रद्धा सम्यग्दर्शन।
आतम का श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन ।। २।।

(गाथा)

विहरदि जाव जिणिंदो सहसट्ठसुलक्खणेहिं संजुत्तो।
चउतीसअइसयजुदो सा पडिमा थावरा भणिया।। ३५।।
बारसविहतवजुत्ता कम्मं खविऊण विहिबलेण सं।
वोसट्टचत्तदेहा णिव्वाणमणुत्तरं पत्ता।। ३६।।

प्रशम और संवेग कहा है सम्यग्दर्शन ।
अनुकम्पा आस्तिक्य कहा है सम्यग्दर्शन ।।
जिनमत का श्रद्धान कहा है सम्यग्दर्शन ।
सच्चे सुख की खान अहा यह सम्यग्दर्शन ।। ३।।

भिन्न-भिन्न अनुयोगों में रे विविध नयों से ।
रे अनेक विध समझाया है सम्यग्दर्शन ।।
जिनदर्शन का जीवन है यह सम्यग्दर्शन ।
अरे आत्मा का अनुभव है सम्यग्दर्शन ।। ४।।

नहीं धर्म की शुरूआत होती इसके बिन ।
इसके बिन चारित्र-ज्ञान सम्यक् नहीं होते ।।
इसके बिन व्रत, तप, संयम हैं सभी निरर्थक ।
एक इसी से सभी धर्म सार्थक होते हैं ।। ५।।

परमशुद्धनिश्चयनय की जो विषयवस्तु है ।
वह अपना आतम ही तो कारण परमातम ।।
उसमें अपनापन ही तो सम्यग्दर्शन है ।
उसे जान कर उसमें ही जमना रमना है ।। ५।।

सम्यग्दर्शन बिन यह आतम चतुर्गति में ।
बिन विवेक के ही अनादि से भटक रहा है ।।
कर एकत्व-ममत्व जगत के परद्रव्यों में ।
दर-दर भटकत अर असीम दुख भुगत रहा है ।। ६।।

बनकर पर का कर्त्ता-धर्त्ता यह अज्ञानी ।
कर्त्तापन की आकुलता को भोग रहा है ।।
और बोझ से कर्त्तापन के दबा जा रहा ।
पर के भीतर ही यह सुख-दुख खोज रहा है ।। ७।।

'अपना सुख तो अपने में है' – यह अज्ञानी ।
नहीं जानता इसीलिये तो भटक रहा है ।।
और मानता अरे सुक्ख इन्द्रिय विषयों में ।
इसीलिये उनके संग्रह में अटक रहा है ।। ८ ।।

अरे अटकने से थोड़ी देरी हो सकती ।
किन्तु भटकना तो अनन्तभव भटका सकता ।।
रे चरित्र की कमजोरी को अटकन कहते ।
किन्तु भटकना तो होता है मिथ्यादर्शन ।। ९ ।।

श्रद्धा का अपराध भयंकर महा कष्टकर ।
पापों का है बाप अरे यह मिथ्यादर्शन ।।
यह दर्शन अधिकार बचाता है भटकन से ।
और हमारा दर्शन होता सम्यग्दर्शन ।। १० ।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनपाहुड़ाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

इसप्रकार पूरा हुआ दर्शनपाहुड़ ग्रन्थ।
इसमें बतलाया गया निर्ग्रन्थों का पंथ।। ११ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

३

सूत्रपाहुड़ पूजन

स्थापना

(हरिगीत)

दिव्यध्वनि का सार ले निर्ग्रन्थ गणधर देव ने।
जो ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं वे सूत्र हैं जिनमार्ग में।। १।।
जिनमार्ग प्रतिपादक अरे संक्षेप में सुगठित वचन।
ही सूत्र हैं हे भव्यजन! श्री हितंकर जिनवर कथन।। २।।

(दोहा)

भटकावें संसार में अज्ञों के उत्सूत्र।
पावन पावन करत हैं जिनवाणी के सूत्र।। ३।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागम ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागम !! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीश्रीसूत्रपाहुड़परमागम !!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(मानव)

जल

यह प्रासुक जल अति निर्मल चरणों में अर्पण करते।
निर्मल हो सबका आतम सद्भाव समर्पण करते।।
जन-जन आनन्दित हों सुन भव्यों को हितकारी हैं।
जिनवर के वचन अनूपम अद्भुत मंगलकारी हैं।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागमाय जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

पावन चन्दन अति शीतल चरणों में अर्पण करते।
शीतल हो सबका मानस सद्भाव समर्पण करते।।
जन-जन आनन्दित हों सुन भव्यों को हितकारी हैं।
जिनवर के वचन अनूपम अद्भुत मंगलकारी हैं।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागमाय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

अक्षत अखण्ड अविनाशी हैं सिद्धशिला से मंगल।
अक्षत पद के अभिलाषी जहाँ कुछ भी नहीं अमंगल।।
जन-जन आनन्दित हों सुन भव्यों को हितकारी हैं।
जिनवर के वचन अनूपम अद्भुत मंगलकारी हैं।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

ये पुष्प सुगन्धित मनहर मन को मोहित करते हैं।
पर मन को शान्त न करते अर मोह नहीं हरते हैं।।
जन-जन आनन्दित हों सुन भव्यों को हितकारी हैं।
जिनवर के वचन अनूपम अद्भुत मंगलकारी हैं।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागमाय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नेवैद्य

पकवान विविध मनभावन मन आकर्षित करते हैं।
सब विध अनुकूल लगे पर ये क्षुधा नहीं हरते हैं।।
जन-जन आनन्दित हों सुन भव्यों को हितकारी हैं।
जिनवर के वचन अनूपम अद्भुत मंगलकारी हैं।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागमाय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

मणिमय रत्नों के दीपक लौकिक अंधियारा हरते।
रे अज्ञजनों के मन का ये अंधकार ना हरते।।
जन–जन आनन्दित हों सुन भव्यों को हितकारी हैं।
जिनवर के वचन अनूपम अद्‌भुत मंगलकारी हैं।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागमाय मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

सबको आनन्दित करती यह धूप सुगन्धित जग में।
है पूर्ण निरर्थक लेकिन सुखमय मुक्ति के मग में।।
जन–जन आनन्दित हों सुन भव्यों को हितकारी हैं।
जिनवर के वचन अनूपम अद्‌भुत मंगलकारी हैं।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

शुभ–अशुभ सभी कर्मों का फल सुख–दुःख भोगा अब तक।
पर सच्चा सुख मुक्ति का हे नाथ मिला न अब तक।।
जन–जन आनन्दित हों सुन भव्यों को हितकारी हैं।
जिनवर के वचन अनूपम अद्‌भुत मंगलकारी हैं।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

सूत्रों को अर्पण करने यह अर्घ्य अमोलक लाये।
जो है अनर्घ्य पद मुक्ति उसको पाने हम आये।।
जन–जन आनन्दित हों सुन भव्यों को हितकारी हैं।
जिनवर के वचन अनूपम अद्‌भुत मंगलकारी हैं।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

।। सूत्रपाहुड़ ।।

(दोहा)

इस पाहुड़ में कहे हैं अद्‌भुत अनुपम सूत्र।
जिन आगम के मूल हैं इस पाहुड़ के सूत्र।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब सर्वप्रथम आचार्यश्री कुन्दकुन्द देव सूत्र का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

अरहंत–भासित ग्रथित–गणधर सूत्र से ही श्रमणजन।
परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन।। १ ।।

ॐ ह्रीं सूत्रस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३२।।

अब, भव्य जीव का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

जो भव्य हैं वे सूत्र में उपदिष्ट शिवमग जानकर।
जिनपरम्परा से समागत शिवमार्ग में वर्तन करें।। २ ।।

ॐ ह्रीं भव्यजीवस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३३।।

(गाथा)

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं।। १ ।।
सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आइरियपरंपूरेण मग्गेण।
णाऊण दुविह सुत्तं वट्टदि सिवमग्ग जो भव्वो।। २ ।।

अब, दृष्टान्तपूर्वक जो सूत्र में प्रवीण हैं, वह संसार का नाश करता है, ऐसा कहते हैं – (हरिगीत)

डोरा सहित सुइ नहीं खोती गिरे चाहे वन–भवन।
संसार–सागर पार हों जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण।। ३ ।।
संसार में गत गृहीजन भी सूत्र के ज्ञायक पुरुष।
निज आतमा के अनुभवन से भवोदधि से पार हों।। ४ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपूर्वकसंसारविनाशकसूत्रज्ञस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३४ ।।

अब सूत्र में अर्थ क्या है, वह कहते हैं – (हरिगीत)

जिनसूत्र में जीवादि बहुविध द्रव्य तत्त्वारथ कहे।
हैं हेय पर व अहेय निज जो जानते सद्दृष्टि वे।। ५ ।।

ॐ ह्रीं सूत्रार्थे हेयोपादेयस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३५ ।।

अब व्यवहार–परमार्थ रूप दोनों सूत्रों को जानकर योगीश्वर शुद्धभाव करके सुख को पाते हैं, ऐसा कहते हैं – (हरिगीत)

परमार्थ या व्यवहार जो जिनसूत्र में जिनवर कहे।
सब जान योगी सुख लहें मलपुंज का क्षेपण करें।। ६ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहार–परमार्थसूत्रफलप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ३६ ।।

(गाथा)

सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्तेण सहा णो वि।। ३ ।।
पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणांसइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेदण पच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि।। ४।।
सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी।। ५ ।।
जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं।। ६ ।।

अब जो सूत्र के अर्थपद से भ्रष्ट हैं, उसको मिथ्यादृष्टि जानना ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

सूत्रार्थ से जो नष्ट हैं वे मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं।
तुम खेल में भी नहीं धरना यह सचेलक वृत्तियाँ।। ७ ।।

ॐ ह्रीं सूत्रार्थभ्रष्टमिथ्यादृष्टिस्वरूपप्ररूपक सचेलकवृत्तिनिषेधक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३७ ।।

अब जिनसूत्र से भ्रष्ट हरि–हरादिक के तुल्य हों तो भी मोक्ष नहीं पाता है, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

सूत्र से हों भ्रष्ट जो वे हरहरी सम क्यों न हों।
स्वर्गस्थ हों पर कोटि भव अटकत फिरें ना मुक्त हों।। ८ ।।

ॐ ह्रीं सूत्रभ्रष्टहरिहरतुल्यस्यापि मोक्षाभावप्ररूपक श्रीसुत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। ३८ ।।

अब जो जिनसूत्र से च्युत हुये हैं और स्वच्छन्द प्रवर्तते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

सिंह सम उत्कृष्टचर्या हो तपी गुरु भार हो।
पर हो यदी स्वच्छन्द तो मिथ्यात्व है अर पाप हो।। ९ ।।

ॐ ह्रीं जिनसूत्रच्युतमिथ्यादृष्टिप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ३९ ।।

(गाथा)

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स।। ७।।
हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।। ८ ।।
उक्किट्ठसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुयभारो य।
जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छदि होदि मिच्छतं।। ९ ।।

अब कहते हैं कि जिनसूत्र में ऐसा मोक्षमार्ग कहा है –

(हरिगीत)

निश्चेल एवं पाणिपात्री जिनवरेन्द्रों ने कहा।
बस एक है यह मोक्षमारग शेष सब उन्मार्ग हैं।। १०।।

ॐ ह्रीं अचेलकमुक्तिमार्गस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं....।। ४० ।।

अब दिगम्बर मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति कहते हैं –

(हरिगीत)

संयम सहित हों जो श्रमण हों विरत परिग्रहारंभ से।
वे वन्द्य हैं सब देव–दानव और मानुष लोक से।। ११ ।।
निजशक्ति से सम्पन्न जो बाइस परीषह को सहें।
अर कर्म क्षय वा निर्जरा सम्पन्न मुनिजन वंद्य हैं।। १२ ।।

ॐ ह्रीं दिगम्बरमोक्षमार्गस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ४१ ।।

अब दिगम्बर मुद्रा सिवाय कोई सम्यग्दर्शन–ज्ञान से युक्त हों वे इच्छाकार करने के योग्य हैं, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

अवशेष लिंगी वे गृही जो ज्ञान दर्शन युक्त हैं।
शुभ वस्त्र से संयुक्त इच्छाकार के वे योग्य हैं।। १३ ।।

ॐ ह्रीं इच्छाकारयोग्यस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ४२ ।।

(गाथा)

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे।। १०।।
जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए।। ११।।
जे बावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू।। १२।।
अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्म संजुत्ता।
चेलेगा य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जा य।। १३।।

अब इच्छाकार योग्य श्रावक का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

मर्मज्ञ इच्छाकार के अर शास्त्र सम्मत आचरण।
सम्यक् सहित दुष्कर्म त्यागी सुख लहें परलोक में।। १४ ।।

ॐ ह्रीं इच्छाकारयोग्यश्रावकस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं .....।। ४३ ।।

अब इच्छाकार के प्रधान अर्थविहीन अन्य धर्म का आचरण करता है, वह सिद्धि को नहीं पाता है, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

जो चाहता नहिं आतमा वह आचरण कुछ भी करे।
पर सिद्धि को पाता नहीं संसार में भ्रमता रहे।। १५ ।।

ॐ ह्रीं इच्छाकारज्ञानाभावे मोक्षाभावप्ररूपक श्रीसुत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं...।। ४४ ।।

अब अपने को जानना एवं श्रद्धान करना ही मोक्ष का उपाय है, ऐसा कहते हैं – (हरिगीत)

बस इसलिए मन वचन तन से आत्म की आराधना।
तुम करो जानो यत्न से मिल जाय शिवसुख साधना।। १६ ।।

ॐ ह्रीं स्वश्रद्धानज्ञानमोक्षकारणत्वप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। ४५ ।।

अब जिनसूत्र के जाननेवाले मुनि का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

बालाग्र के भी बराबर ना परीग्रह हो साधु के।
अर अन्य द्वारा दत्त पाणीपात्र में भोजन करें।। १७ ।।

ॐ ह्रीं जिनसूत्रज्ञातामुनिस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ४६ ।।

(गाथा)

इच्छायारमहत्थं सुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ट्ठियसम्मत्तं परलोयसुहंकरो होदि।। १४।।
अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइ करेइ णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।। १५।।
एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण।। १६।।
वालग्गकोडिमेत्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणं।
भुजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि।। १७।।

अब मुनियों के अल्प परिग्रह को भी दोष बताते हैं –

(हरिगीत)

जन्मते शिशुवत् अकिंचन नहीं तिल–तुष हाथ में।
किंचित् परीग्रह साथ हो तो श्रमण जाँयें निगोद में।। १८ ।।
थोड़ा–बहुत भी परिग्रह हो जिस श्रमण के पास में।
वह निन्द्य है निर्ग्रन्थ होते जिनश्रमण आचार में।। १९ ।।

ॐ ह्रीं सर्वपरिग्रहरहितमुनिस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ४७ ।।

अब जिनवचन में ऐसे मुनि वन्दनीय योग्य कहे हैं –

(हरिगीत)

महाव्रत हों पाँच गुप्ती तीन से संयुक्त हों।
निरग्रन्थ मुक्ती पथिक वे ही वंदना के योग्य हैं।। २० ।।

ॐ ह्रीं वन्दनीयमुनीस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ४८ ।।

अब द्वितीय भेषरूप उत्कृष्ट श्रावक का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

जिनमार्ग में उत्कृष्ट श्रावक लिंग होता दूसरा।
भिक्षा ग्रहण कर पात्र में जो मौन से भोजन करे।। २१ ।।

ॐ ह्रीं उत्कृष्टश्रावकस्वरूपप्ररूपक श्रीसुत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ४९ ।।

(गाथा)

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमेत्तं ण गिहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण णिग्गोदम्।। १८।।
जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो।। १९।।
पंचमहव्वयजुत्तो तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य।। २०।।
दुइयं च उत्त लिंगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्ते समिदीभासेण मोणेण।। २१।।

अब तीसरे लिंग का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

अर नारियों का लिंग तीजा एक पट धारण करें।
वह नग्न ना हो दिवस में इकबार ही भोजन करें।। २२ ।।

ॐ ह्रीं तृतीयलिंग-आर्यिकास्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५० ।।

अब वस्त्रधारक के मोक्ष नहीं, मोक्षमार्ग तो नग्नत्वपनेरूप हैं ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

सिद्ध ना हो वस्त्रधर वह तीर्थकर भी क्यों न हो।
बस नग्नता ही मार्ग है अर शेष सब उन्मार्ग हैं।। २३ ।।

ॐ ह्रीं नग्नत्वमोक्षमार्गस्वरूपप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५१ ।।

अब स्त्रियों के दीक्षा नहीं हैं, उसका कारण कहते हैं –

(हरिगीत)

नारियों की योनि नाभी काँख अर स्तनों में।
जिन कहे हैं बहु जीव सूक्षम इसलिए दीक्षा न हो।। २४ ।।

ॐ ह्रीं स्त्रीदीक्षानिषेधकश्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीत स्वाहा।। ५२ ।।

(गाथा)

लिंगं इत्थीण हवदि भुंजइ पिंड सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेदि।। २२ ।।
णवि सिज्झदि वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।। २३ ।।
लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहुमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा।। २४ ।।

अब यदि स्त्री भी दर्शन से शुद्ध हों तो वह पाप रहित है, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

पर यदी वह सद्दृष्टि हो संयुक्त हो जिनमार्ग में।
सद्आचरण से युक्त तो वह भी नहीं है पापमय।। २५ ।।

ॐ ह्रीं दर्शनसहितस्त्री पापरहितप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं ....।। ५३ ।।

अब स्त्रियों के ध्यान की भी सिद्धि नहीं है, ऐसा कहते हैं–

(हरिगीत)

चित्तशुद्धी नहीं एवं शिथिलभाव स्वभाव से।
मासिकधरम से चित्त शंकित रहे वंचित ध्यान से।। २६ ।।

ॐ ह्रीं स्त्रीणां ध्याननिषेधक श्रीसुत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५४ ।।

अब सूत्रपाहुड़ को समाप्त करते हुए सुख का कारण कहते हैं–

(हरिगीत)

जलनिधि से पटशुद्धिवत जो अल्पग्राही साधु हैं।
हैं सर्व दुख से मुक्त वे इच्छा रहित जो साधु हैं।। २७ ।।

ॐ ह्रीं सुखकारणत्वप्ररूपक श्रीसूत्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५५ ।।

(गाथा)

जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पव्वया भणिया।। २५।।
चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणा।। २६।।
गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं।। २७।।

जयमाला

(दोहा)

पूजन अर अर्घ्यावली पूरण हुई अनूप।
अब जयमाला में सुनो सूत्रों का सद्रूप ।। १ ।।

(रोला)

गणधर जैसे सन्तों द्वारा जिन आगम में।
दिव्यध्वनि का मर्म रखा जाता सूत्रों में ।।
प्रस्तुत करते सन्त सरल सुबोध भाषा में।
अति संक्षिप्त कथन होता है जिनसूत्रों में ।। २।।

अरे अनन्ते जीव जगत में ऐसे भी हैं ।
जो केवल केवलज्ञानी से जाने जाते ।।
दिव्यध्वनि अनुसार रचे सूत्रों के द्वारा ।
वे सद्ज्ञानी छद्मस्थों से जाने जाते ।। ३ ।।

उनकी हिंसा से बचने का इक उपाय है ।
सूत्रों के अनुसार रहे आचरण हमारा ।।
ऐसी श्रद्धा सन्तों की रहती है हरदम ।
इसीलिये वे आगमचक्षु कहलाते हैं ।। ४ ।।

जिनसूत्रों में कहा गया जो सन्त आचरण ।
उसके ही अनुसार साधुचर्या होती है ।।
इसीलिये उनको कहते हैं आगमचक्षु ।
मुनिधर्म की आगम में चर्चा होती है ।। ५ ।।

संयम हो सद्दृष्टि विरत आरंभ-परिग्रह ।
आगम के अनुसार चरण हो जिन सन्तों का ।।
उन सन्तों के चरणों में सब लोक झुकेगा ।
उनके ही दासानुदास होते ज्ञानीजन ।। ६ ।।

सूत्रों के अनुसार आचरण न हो यदि तो ।
होकर के भी नग्न दिगम्बर साधु नहीं वे ।।
यद्यपि होते नग्न दिगम्बर साधु सदा ही ।
नग्न दिगम्बर होने पर भी साधु नहीं वे ।। ७ ।।

चाहे जितने हों महान पर सूत्र भ्रष्ट हों ।
अरे दिगम्बर जैनों के वे साधु नहीं हैं ।।
अरे करोड़ों भव तक भटके भव सागर में ।
उन्हें मुक्ति होना संभव न दूर-दूर तक ।। ८ ।।

जमीकन्द में जो अनन्त जीवाणु होते ।
वे भी केवलज्ञानी द्वारा जाने जाते ।।
श्रावकजन का सदाचरण भी सूत्र बताते ।
उनका भी आचरण सूत्र पर आधारित हैं ।। ९ ।।

मुनिराजों के संयम के आधार सूत्र हैं ।
श्रावकजन का सदाचार सूत्रों पर निर्भर ।।
चारों ही अनुयोग हमारे जिनशासन के ।
एकमात्र जिन आगम पर ही सब निर्भर हैं ।। १० ।।

अरे सूत्रपाहुड़ में सूत्रों की महानता ।
समझाई है संतशिरोमणि कुन्दकुन्द ने ।।
सूत्रों के अनुसार सभी का सदाचरण हो ।
यही भावना भाई है श्री कुन्दकुन्द ने ।। ११ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसूत्रपाहुड़परमागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

सूत्रों का अधिकार यह पूरण हुआ पवित्र ।
इसकी महिमा जानकर धारो अपने चित्त ।। १२ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

४

चारित्रपाहुड़ पूजन

स्थापना

(हरिगीत)

आतमा का आतमा में चरण ही चारित्र है।
सद्ज्ञान-दर्शनपूरवक आचरण ही चारित्र है।।
स्वयं की वस स्वयं में ही रमणता चारित्र है।
निज लीनता चारित्र है सद् आचरण चारित्र है।। १।।

सम्यक्चरण चारित्र है संयमचरण चारित्र है।
एवं स्वयं की ओर बढ़ती साधना चारित्र है।।
निज आतमा में रमणता ही आतमा का धरम है।
अब अधिक क्या कहें यह ही सत् धरम का मरम है।। २।।

(दोहा)

सम्यक्चारित्र जीव का एकमात्र आधार।
इसको धरकर जीव सब हो जाते भवपार।। ३।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागम ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागम !! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागम !!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(वीर)

जल

अरे जगत में जगजीवों का जल है जीवन का आधार।
जल अर्पण कर चरण कमल में हो जाऊँ मैं भव से पार।।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने चारित[१] पाहुड़ रचा महान।
इसमें दर्शन-ज्ञानपूर्वक चारित महिमा का व्याख्यान।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

चारुचन्द्र के किरण जाल सा चन्दन शीतल अर अम्लान।
चन्दन सी शीतलता पाने निर्मलता आकाश समान।।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने चारितपाहुड़ रचा महान।
इसमें दर्शन-ज्ञानपूर्वक चारित महिमा का व्याख्यान।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

अक्षत सम अक्षत अविनाशी अर अखण्ड यह आतमराम।
आत्मसाधना में रत रहने को उद्धत यह सिद्ध समान।।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने चारितपाहुड़ रचा महान।
इसमें दर्शन-ज्ञानपूर्वक चारित महिमा का व्याख्यान।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

अरे सुमन से सुमन सुगन्धित पुष्पों से रुचिकर अम्लान।
मन को मोहित करे परन्तु यह अगंध आतम अम्लान।।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने चारितपाहुड़ रचा महान।
इसमें दर्शन-ज्ञानपूर्वक चारित महिमा का व्याख्यान।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

१. ध्यान रहे जहाँ **चारित्र** में '**त्र**' के स्थान '**त**' लिखा है, उसे '**त**' ही पढ़ें। उसे सुधारने की कोशिश न करें।

नेवैद्य

विविध रसों से आपूरित हैं विध–विध के विध–विध पकवान।
मन को मोहित करे किन्तु यह[१] अरस अरूप अगंध महान।।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने चारितपाहुड़ रचा महान।
इसमें दर्शन–ज्ञानपूर्वक चारित महिमा का व्याख्यान।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय क्षुधारोग–विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

जगमग करते जग के दीपक सीमित जग में करें प्रकाश।
ज्ञान जानता सभी द्रव्य एवं अनुपम असीम आकाश।।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने चारितपाहुड़ रचा महान।
इसमें दर्शन–ज्ञानपूर्वक चारित महिमा का व्याख्यान।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

अरे दशांगी धूप जगत में मन आकर्षित करती है।
पर अबद्ध–अस्पृष्ट आतमा का यह क्या कर सकती है।।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने चारितपाहुड़ रचा महान।
इसमें दर्शन–ज्ञानपूर्वक चारित महिमा का व्याख्यान।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

रहे अफल सारे जग के फल सफल आतमा का अभियान।
सभी संपदा अपने में है सफल सदा जीवन अभियान।।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने चारितपाहुड़ रचा महान।
इसमें दर्शन–ज्ञानपूर्वक चारित महिमा का व्याख्यान।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

१. आत्मा

अर्घ्य

बेशकीमती सभी द्रव्य हैं उनका यह समुदाय अनर्घ्य।
सबको अर्पित करता हूँ मैं पाऊँ पद अभिराम अनर्घ्य।।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने चारितपाहुड़ रचा महान।
इसमें दर्शन-ज्ञानपूर्वक चारित महिमा का व्याख्यान।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

।। चारित्रपाहुड़ ।।

(दोहा)

चारित पाहुड़ में कहा चारित का सद्रूप।
निश्चय से यह धर्म है यह है आत्मस्वरूप।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब सर्वप्रथम आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव मंगल के लिए इष्टदेव को नमस्कार करके चारित्रपाहुड़ को कहने की प्रतिज्ञा करते हैं -

(हरिगीत)

सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी अमोही अरिहंत जिन।
त्रैलोक्य से हैं पूज्य जो उनके चरण में कर नमन।। १ ।।
ज्ञान-दर्शन-चरण सम्यक् शुद्ध करने के लिए।
चारित्रपाहुड़ कहूँ मैं शिवसाधना का हेतु जो।। २ ।।

ॐ ह्रीं चारित्रपाहुड़प्ररूपणाप्रतिज्ञापूर्वक अर्हद्भ्यो नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५६।।

(गाथा)

सव्वण्हु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी।
वंदित्तु तिजगवंदा अरहंता भव्वजीवेहिं।। १।।
णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेसिं।
मोक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुणं वोच्छे।। २ ।।युग्मम्।।

अब, रत्नत्रय का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

जो जानता वह ज्ञान है जो देखता दर्शन कहा।
समयोग दर्शन–ज्ञान का चारित्र जिनवर ने कहा।। ३ ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयस्वरूपप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५७ ।।

अब दो प्रकार के चारित्र का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

तीन ही ये भाव जिय के अखय और अमेय हैं।
इन तीन के सुविकास को चारित्र दो विध जिन कहा।। ४ ।।
है प्रथम सम्यक्त्वाचरण जिन ज्ञानदर्शन शुद्ध है।
है दूसरा संयमचरण जिनवर कथित परिशुद्ध है।। ५ ।।

ॐ ह्रीं द्विविधचारित्रप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५८ ।।

अब सम्यक्त्वाचरण चारित्र के मल–दोषों के परिहार की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

सम्यक्त्व के जो दोष मल शंकादि जिनवर ने कहे।
मन–वचन–तन से त्याग कर सम्यक्त्व निर्मल कीजिए।। ६ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वाचरण–मलदोषपरिहारक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। ५९ ।।

(गाथा)

जं जाणइ तं णाणं जं पेच्छइ तं च दंसणं भणियं।
णाणस्स णिच्छियस्स य समवण्णा होइ चारित्तं।। ३ ।।
एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अक्खयामेया।
तिण्हं पि सोहणत्थे जिणभणियं दुविहं चारित्तं।। ४।।
जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।
बिदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि।। ५ ।।
एवं चिय णाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस संकाइ।
परिहर सम्मत्तमला जिणभणिया तिविहजोएण।। ६ ।।

अब सम्यक्त्व के आठ अंगों का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

निशंक और निकांक्ष अर निर्ग्लान दृष्टि–अमूढ़ है।
उपगूहन अर थितिकरण वात्सल्य और प्रभावना।। ७ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्व–अष्टांगप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६० ।।

अब अष्टांग से सम्यक्त्वाचरण चारित्र शुद्ध होता ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

इन आठ गुण से शुद्ध सम्यक् मूलतः शिवथान है।
सद्ज्ञानयुत आचरण यह सम्यक्चरण चारित्र है।। ८ ।।

ॐ ह्रीं अष्टांगयुक्तशुद्धसम्यक्त्वाचरणप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। ६१ ।।

अब सम्यक्त्वाचरणपूर्वकसंयमचरण से निर्वाण की प्राप्ति होती है ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

सम्यक्चरण से शुद्ध अर संयमचरण से शुद्ध हों।
वे समकिती सद्ज्ञानिजन निर्वाण पावें शीघ्र ही।। ९ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वाचरणपूर्वक–संयमाचरणेन निर्वाण प्राप्तिप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६२ ।।

अब जो सम्यक्त्व से भ्रष्ट हैं और संयम का आचरण करते हैं वे भी मोक्ष नहीं पाते हैं, ऐसा कहते हैं –

(गाथा)

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ।। ७।।
तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाए।
जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।। ८ ।।
सम्मत्तचरणसुद्धा संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा।
णाणी अमूढ़दिट्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं।। ९।।

(हरिगीत)

सम्यक्चरण से भ्रष्ट पर संयमचरण आचरें जो।
अज्ञान मोहित मती वे निर्वाण को पाते नहीं।। १०।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वाचरणाभावे संयमाचरणेननिर्वाणाभावप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६३ ।।

अब सम्यक्त्वाचरण चारित्र के चिह्न कहते हैं –

(हरिगीत)

विनयवत्सल दयादानरु मार्ग का बहुमान हो।
संवेग हो हो उपागूहन स्थितिकरण का भाव हो।। ११ ।।
अर सहज आर्जव भाव से ये सभी लक्षण प्रगट हों।
तो जीव वह निर्मोह मन से करे सम्यक् साधना।। १२ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वाचरण चारित्रचिह्नप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं...।। ६४ ।।

अब सम्यक्त्व से रहित जीव का लक्षण कहते हैं –

(हरिगीत)

अज्ञानमोहित मार्ग की शंसा करे उत्साह से।
श्रद्धा कुदर्शन में रहे तो बमे सम्यक्भाव को।। १३ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वरहितजीवलक्षणप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय अर्घ्यं नि.।। ६५ ।।

(गाथा)

सम्मत्तचरणभट्ठा संजमचरणं चरंति जे वि णरा।
अण्णाणणाणमूढा तह वि ण पावंति णिव्वाणं।। १० ।।
वच्छल्लं विणएण य अणुकंपाए सुदाणदच्छाए।
मग्गगुणसंसणाए अवगूहण रक्खणाए य।। ११ ।।
एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं।
जीवो आराहंतो जिणसम्मत्तं अमोहेण।। १२ ।।
उच्छाहभावणासंपसंससेवा कुदंसणे सद्धा।
अण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणसम्मं।। १३ ।।

अब सम्यक्त्व से सहित जीव का लक्षण कहते हैं –

(हरिगीत)

सद्ज्ञान सम्यक्भाव की शंसा करे उत्साह से।
श्रद्धा सुदर्शन में रहे ना बमे सम्यक्भाव को।। १४ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वसहितजीवलक्षणप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। ६६ ।।

अब अज्ञान मिथ्यात्व कुचारित्र के त्याग का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

तज मूढ़ता अज्ञान हे जिय ज्ञान–दर्शन प्राप्त कर।
मद मोह हिंसा त्याग दे जिय अहिंसा को साधकर।। १५ ।।

ॐ ह्रीं अज्ञानमिथ्यात्वकुचारित्रनिषेधक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६७ ।।

अब परिग्रह के त्यागपूर्वक सुविशुद्धध्यानरूप हो, ऐसा उपदेश करते हैं –

(हरिगीत)

सब संग तज ग्रह प्रव्रज्या रम सुतप संयमभाव में।
निर्मोह हो तू वीतरागी लीन हो शुधध्यान में।। १६ ।।

ॐ ह्रीं निष्परिग्रहसुविशुद्धध्यानप्रेरक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६८ ।।

अब अज्ञान और मिथ्यात्व के दोष से मिथ्यामार्ग में प्रवर्तन करता है, ऐसा कहते हैं – (हरिगीत)

मोहमोहित मलिन मिथ्यामार्ग में ये भूल जिय।
अज्ञान अर मिथ्यात्व कारण बंधनों को प्राप्त हो।। १७ ।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्वकारणप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६९ ।।

(गाथा)

उच्छाहभावणासंपसंससेवा सुदंसणे सद्धा।
ण जहदि जिणसम्मत्तं कुव्वंतो णाणमग्गेण।। १४।।
अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जह णाणे विसुद्धसम्मत्ते।
अह मोहं सारंभं परिहर धम्मे अहिंसाए।। १५।।
पव्वज्ज संगचाए पयट्ट सुतवे सुसंजमे भावे।
होइ सुविसुद्धझाणं णिम्मोहे वीयरायत्ते।। १६।।
मिच्छादंसणमग्गे मलिणे अण्णाणमोहदोसेहिं।
वज्झंति मूढजीवा मिच्छत्ताबुद्धिउदएण।। १७।।

अब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-श्रद्धान से चारित्र के दोष दूर होते हैं, ऐसा कहते हैं -

(हरिगीत)

सद्ज्ञानदर्शन जानें देखें द्रव्य अर पर्यायों को।
सम्यक् करे श्रद्धान अर जिय तजे चरणज दोष को।। १८ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रदोषपरिहारक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७० ।।

अब मोहरहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शीघ्र मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं - (हरिगीत)

सद्ज्ञानदर्शनचरण होते हैं अमोही जीव को।
अर स्वयं की आराधना से हरें बन्धन शीघ्र वे।। १९ ।।

ॐ ह्रीं मोहरहितरत्नत्रयनिर्वाणप्राप्तिप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। ७१ ।।

अब सम्यक्त्वाचरणचारित्र का फल कहते हैं -

(हरिगीत)

सम्यक्त्व के अनुचरण से दुख क्षय करें सब धीरजन।
अर करें वे जिय संख्य और असंख्य गुणमय निर्जरा।। २० ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वाचरणचारित्रफलप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय अर्घ्यं...।। ७२ ।।

अब संयमाचरणचारित्र के भेद कहते हैं -

(हरिगीत)

सागार अर अनगार से यह द्विविध है संयमचरण।
सागार हों सग्रन्थ अर निर्ग्रन्थ हों अणगार सब।। २१ ।।

ॐ ह्रीं द्विविधसंयमाचरणचारित्रप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७३ ।।

(गाथा)

सम्मद्दंसण पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मेणय सद्दहदि य परिहरदि चरित्तजे दोसे।। १८।।
एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स मोहरहियस्स।
णियगुणमाराहंतो अचिरेण य कम्म परिहरइ।। १९।।
संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरुमत्ता णं।
सम्मत्तमणुचरंता करेंति दुक्खक्खयं धीरा।। २०।।
दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं।
सायारं सग्गंथे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं।। २१।।

अब सागार संयमाचरणचारित्र का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

देशव्रत सामायिक प्रोषध सचित निशिभुज त्यागमय।
ब्रह्मचर्य आरम्भ ग्रन्थ तज अनुमति अर उद्देश्य तज।। २२ ।।
पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत कहे।
यह गृहस्थ का संयमचरण इस भांति सब जिनवर कहें ।। २३ ।।

ॐ ह्रीं सागारसंयमाचरणचारित्रस्वरूपप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। ७४ ।।

अब पाँच–अणुव्रतों का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

त्रसकायवध अर मृषा चोरी तजे जो स्थूल ही।
परनारि का हो त्याग अर परिमाण परिग्रह का करे।। २४ ।।

ॐ ह्रीं पंचअणुव्रतस्वरूपप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७५ ।।

अब तीन गुणव्रतों का स्वरूप कहते हैं–

(हरिगीत)

दिशि–विदिश का परिमाण दिग्व्रत अर अनर्थकदण्डव्रत।
परिमाण भोगोपभोग का ये तीन गुणव्रत जिन कहें।। २५ ।।

ॐ ह्रीं त्रिविधगुणव्रतस्वरूपप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७६ ।।

(गाथा)

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्ते य।
बंभारंभापरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य।। २२।।
पंचेव णुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं।। २३।।
थूले तसकायवहे थूले मोषे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला परिग्गहाररंभपरिमाणं।। २४।।
दिसिविदि सिमाण पढमं अणत्थदंडस्सवज्जणंबिदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि।। २५।।

अब चार शिक्षाव्रत का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

सामायिका प्रोषध तथा व्रत अतिथिसंविभाग है।
सल्लेखना ये चार शिक्षाव्रत कहे जिनदेव ने ।। २६ ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विधशिक्षाव्रतनिरूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७७ ।।

अब अनगार संयमाचरणचारित्र का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

इस तरह संयमचरण श्रावक का कहा जो सकल है।
अनगार का अब कहूँ संयमचरण जो कि निकल है।। २७ ।।
संवरण पंचेन्द्रियों का अर पंचव्रत पच्चिस क्रिया।
त्रय गुप्ति समिति पंच संयमचरण है अनगार का।। २८ ।।

ॐ ह्रीं अनगारसंयमाचरणचारित्रस्वरूपनिरूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। ७८ ।।

अब पाँच इन्द्रियों के संवरण का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

सजीव हो या अजीव हो अमनोज्ञ हो या मनोज्ञ हो।
ना करे उनमें राग-रुस पंच इन्द्रियाँ, संवर कहा।। २९ ।।

ॐ ह्रीं पंच इन्द्रियसंवरणस्वरूपप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७९ ।।

(गाथा)

सामाइयं च पढमं बिदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते।। २६।।
एवं सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं।
सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिक्कलं वोच्छे।। २७।।
पंचेंदियसंवरणं पंच वया पंचविंसकिरियासु।
पंच समिदि तय गुत्ती संजमचरणं णिरायारं।। २८।।
अमणुण्णे य मणुण्णे सजीवदव्वे अजीवदव्वे य।
ण करेदि रायदोसे पंचेंदियसंवरो भणिओ।। २९।।

अब पंचमहाव्रतों का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

हिंसा असत्य अदत्त अब्रह्मचर्य और परिग्रहा।
इनसे विरति सम्पूर्णत: ही पंच मुनिमहाव्रत कहे।। ३० ।।

ॐ ह्रीं पंचमहाव्रतस्वरूपप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८० ।।

अब पंचमहाव्रतों को महाव्रत कहने का कारण कहते हैं –

(हरिगीत)

ये महाव्रत निष्पाप हैं अर स्वयं से ही महान हैं।
पूर्व में साधे महाजन आज भी हैं साधते।। ३१ ।।

ॐ ह्रीं पंचमहाव्रतहेतुप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८१ ।।

अब अहिंसामहाव्रत की पाँच भावना को कहते हैं –

(हरिगीत)

मनोगुप्ती वचन गुप्ती समिति ईर्या ऐषणा।
आदाननिक्षेपण समिति ये हैं अहिंसा भावना।। ३२ ।।

ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतपंचभावनाप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि.।। ८२ ।।

अब सत्यमहाव्रत की भावना कहते हैं –

(हरिगीत)

सत्यव्रत की भावनायें क्रोध लोभरु मोह भय।
अर हास्य से है रहित होना ज्ञानमय आनन्दमय।। ३३ ।।

ॐ ह्रीं सत्यमहाव्रतभावनाप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८३ ।।

(गाथा)

हिंसाविरइ अहिंसा असच्चविरई अदत्तविरई य।
तुरियं अबंभविरई पंचम संगम्मि विरई य।। ३०।।
साहंति जं महल्ला आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं।
जं च महल्लाणि तदो महव्वया इत्तहे याइं।। ३१।।
वयगुत्ती मणगुत्ती इरियासमिदी सुदाणणिक्खेवो।
अवलोयभोयणाए अहिंसए भावणा होंति।। ३२।।
कोहभयहासलोहा मोहा विवरीयभावणा चेव।
विदियस्स भावणाए ए पंचेव य तहा होंति।। ३३।।

अब अचौर्यमहाव्रत की भावना कहते हैं –

(हरिगीत)

हो विमोचितवास शून्यागार हो उपरोध बिन।
हो एषणाशुद्धी तथा संवाद हो विसंवाद बिन।। ३४ ।।

ॐ ह्रीं अचौर्यमहाव्रतभावनाप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८४ ।।

अब ब्रह्मचर्यमहाव्रत की भावना कहते हैं –

(हरिगीत)

त्याग हो आहार पौष्टिक आवास महिलावासमय।
भोगस्मरण महिलावलोकन त्याग हो विकथा कथन।। ३५ ।।

ॐ ह्रीं ब्रह्मचर्यमहाव्रतभावनाप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८५ ।।

अब अपरिग्रह महाव्रत की भावना कहते हैं –

(हरिगीत)

इन्द्रियों के विषय चाहे मनोज्ञ हों अमनोज्ञ हों।
नहीं करना राग-रुस ये अपरिग्रह व्रत भावना।। ३६ ।।

ॐ ह्रीं अपरिग्रहमहाव्रतभावनाप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८६ ।।

अब पाँच समितियों का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपण सही।
एवं प्रतिष्ठापना संयमशोधमय समिती कही।। ३७ ।।

ॐ ह्रीं पंचसमितिस्वरूपप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८७ ।।

(गाथा)

सुण्णायारणिवासो विमोचियावास जं परोधं च।
एसणसुद्धिसउत्तं साहम्मीसंविसंवादो।। ३४।।
महिलालोयणपुव्वरइसरणसंसत्तवसहिविकहाहिं।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि।। ३५।।
अपरिग्ग्ह समणुण्णेसु सद्दपरिसरसरूवगंधेसु।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति।। ३६।।
इरिया भासा एसण जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
संजमसोहिणिमित्तं खंति जिणा पंच समिदीओ।। ३७।।

अब ज्ञानस्वरूप आत्मा का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

सब भव्यजन संबोधने जिननाथ ने जिनमार्ग में।
जैसा बताया आतमा हे भव्य ! तुम जानो उसे।। ३८ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानस्वरूप-आत्मप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८८ ।।

अब सम्यग्ज्ञानी का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

जीव और अजीव का जो भेद जाने ज्ञानि वह।
रागादि से हो रहित शिवमग यही है जिनमार्ग में।। ३९ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानीस्वरूपप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८९ ।।

अब जो मोक्षमार्ग को जानकर उसमें श्रद्धासहित प्रवृत्ति करता है, वह शीघ्र ही मोक्ष को पाता है, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

तू जान श्रद्धाभाव से उन चरण-दर्शन-ज्ञान को।
अतिशीघ्र पाते मुक्ति योगी अरे जिनको जानकर।। ४० ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयश्रद्धाननिर्वाणकारणप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं....।। ९० ।।

अब सिद्धपरमेष्ठी का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञानजल में नहा निर्मल शुद्ध परिणति युक्त हो।
त्रैलोक्यचूड़ामणि बने एवं शिवालय वास हो।। ४१ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठीस्वरूपप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ९१ ।।

(गाथा)

भव्वजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं।
णाणं णाणसरूवं अप्पाणं तं वियाणेहि।। ३८।।
जीवाजीवविभत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी।
रायादिदोसरहिओ जिणसासणे मोक्खमग्गोत्ति।। ३९।।
दंसणणाणचरित्त तिण्णि वि जाणेह परमसद्धाए।
जं जाणिऊण जोई अइरेण लहंति णिव्वाणं।। ४०।।
पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविशुद्धभावसंजुता।
होंति सिवालयवासी तिहुवणचूड़ामणी सिद्धा।। ४१।।

अब ज्ञान को जानने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञानगुण से हीन इच्छितलाभ को ना प्राप्त हों।
यह जान जानो ज्ञान को गुणदोष को पहिचानने।। ४२ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानप्रेरक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ९२ ।।

अब सम्यग्ज्ञानसहित चारित्र अनुपम सुख कारक है, ऐसा कहते हैं –

(हरिगीत)

पर को न चाहें ज्ञानिजन चारित्र में आरूढ़ हो।
अनूपम सुख शीघ्र पावें जान लो परमार्थ से।। ४३ ।।

ॐ ह्रीं अनुपमसुखकारक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ९३ ।।

अब इष्टचारित्र के कथन का संकोच करते हैं –

(हरिगीत)

इसतरह संक्षेप में सम्यक्चरण संयमचरण।
का कथन कर जिनदेव ने उपकृत किये हैं भव्यजन।। ४४ ।।

ॐ ह्रीं चारित्रकथन संक्षेपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ९४ ।।

अब चारित्रपाहुड़ को भाने का उपदेश और उसका फल कहते हैं –

(हरिगीत)

स्फुट रचित यह चरित पाहुड़ पढ़ो पावन भाव से।
तुम चतुर्गति को पारकर अपुनर्भव हो जाओगे।। ४५ ।।

ॐ ह्रीं चारित्रपाहुड़फलप्ररूपक श्रीचारित्रपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ९५ ।।

(गाथा)

भव्वजणबोहणत्थं जिणमग्गे ते सुइच्छियं लाहं।
इय णाउं गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहिं।। ४२ ।।
चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो।। ४३ ।।
एवं संखेवेण य भणियं णाणेण वीयराएण।
सम्मत्तसंजमासयदुण्हं पि उदेसियं चरणं।। ४४ ।।
भावेह भावसुद्धं फुडु रइयं चरणपाहुणं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं अइरेणऽपुणब्भवा होई।। ४५ ।।

जयमाला

(दोहा)

सम्यग्दर्शन ज्ञान युत चारित जग में सार।
मुक्तिमार्ग का है यही एकमात्र आधार।। १ ।।

(रोला)

अपना आतमराम जगत में केवल अपना।
निज आतम का ज्ञान स्वयं में जमना–रमना।।
निज आतम में जमना–रमना ही चरित्र है।
समयसारमय शुद्धातम सब विध पवित्र है।। २ ।।
सबविध आतम ज्ञान–ध्यान एवं संयम मय।
यह निश्चय चारित्र कहा शुद्धोपयोगमय।।
निज आतम की शोध–खोज एवं संशोधन।
जैनधर्म का मरम आतमा का अवलोकन ।। ३ ।।
चारित के दो भेद प्रथम सम्यक्त्व–आचरण।
और दूसरे को कहते हैं संयमाचरण ।।
पहले के हैं आठ अंग जग में भवनाशक।
अर पच्चीसों दोष रहित होता है सम्यक्।। ४ ।।
इन दोषों से रहित आत्मा का अनुभव हो।
आठ अंग से सहित ज्ञानिजन का जीवन हो।।
इन सबकी निर्दोष और बेदाग दशा हो।
अन्तर में परिशुद्ध आतमा का अनुभव हो।। ५ ।।
सम्यग्दृष्टि जीव निशंकित गुण के धारी।
सप्तभयों से रहित सदा निर्भय होते हैं।।
दर्शनमोहजन्य आशंका भय नहीं होते।
चरित मोह संबंधी शंका भय हो सकते।। ६ ।।

चरितमोह संबंधी चाह भले ही होवे।
दर्शनमोहजन्य आकांक्षा नहिं हो सकती।।
निर्विचिकित्सा मूढ़दृष्टि उपगूहन आदि।
इसी तरह आठों अंगों पर घटा लीजिये।। ७ ।।
यह ही है सम्यक्त्व आचरण नामक संयम।
यह ही सम्यग्दृष्टिजनों का सदाचरण है।।
अनुकंपा आस्तिक्य प्रशम संवेग आदि भी।
पाये जाते ज्ञानिजनों के सदाचरण में।। ८ ।।
अनगारी मुनिराज सकल संयम के धारी।
श्रावक होते सदा देश संयम के धारी।।
महाव्रती मुनिराज अणुव्रती श्रावक होते।
यह ही संयमाचरण कहा है जिनवाणी में।। ९ ।।
इन सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण को।
सम्यक्चारित कहते हैं जिन वीर जिनेश्वर।।
दर्शन-ज्ञान सहित संयम ही मुक्तिमार्ग है।
जिनवाणी में कहते हैं श्री वीर जिनेश्वर।। १० ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

इसप्रकार पूरा हुआ चारित्र पाहुड़ ग्रंथ।
इसमें प्रतिपादित हुआ शिव सुखमय शिवपंथ।। ११ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

५

बोधपाहुड़ पूजन

स्थापना

(रोला)

कुन्दकुन्द आचार्य देव की अद्‌भुत रचना।
अरे बोधपाहुड़ की पूजन भक्तिभाव से।।
जिससे सम्यक् बोध प्राप्त हो सभी जनों को।
सभी भव्यजन करते हैं निष्काम भाव से ।। १ ।।

(दोहा)

पूजन सम्यक् बोध की भविजन को हितकार।
बोधभाव की वंदना करते बारंबार।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागम! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागम!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागम!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रोला)

जल

निर्मल जल-सा भक्तिभाव निर्मल कर देता।
दिव्यज्ञान से सभी विकारों को हर लेता।।
अरे बोधपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
सभी भव्य जीवों को सम्यक् बोध दिया है ।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागमाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन

अरे सुगन्धित शीतल चन्दन ताप निकन्दन।
भवतपहारी बोधभाव का करता वन्दन।।
अरे बोधपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
सभी भव्य जीवों को सम्यक् बोध दिया है ।। २।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

क्षत विहीन अक्षत से अक्षतभाव प्राप्त हो।
भव सागर से पार असीमानन्द प्राप्त हो।।
अरे बोधपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
सभी भव्य जीवों को सम्यक् बोध दिया है ।। ३।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

अरे सुगन्धित सुमन[१] सुमन[२] से अर्पित करता।
मन आतम में रमे परम आनन्द बरसता।।
अरे बोधपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
सभी भव्य जीवों को सम्यक् बोध दिया है ।। ४।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

क्षुधावेदना शामक चरु हम अर्पित करते।
क्षुधाभाव का हो अभाव – यह भाव निरखते ।।
अरे बोधपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
सभी भव्य जीवों को सम्यक् बोध दिया है ।। ५।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

---

१. पुष्प २. अच्छे मन से

दीप

सीमित जग को करे प्रकाशित यह जड़ दीपक।
लोकालोक प्रकाशक आतम अनुपम दीपक।।
अरे बोधपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
सभी भव्य जीवों को सम्यक् बोध दिया है ।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागमाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

अरे सुगन्धित धूप जगत को धूमिल करती।
किन्तु आतमा तो परिपूरण स्वपर–प्रकाशक।।
अरे बोधपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
सभी भव्य जीवों को सम्यक् बोध दिया है ।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

मीठे सरस मनोहर ये फल सफल नहीं हैं।
निज आतम अवलोकन करते – वही सफल हैं।।
अरे बोधपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
सभी भव्य जीवों को सम्यक् बोध दिया है ।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

अर्घ्य समर्पित करता हूँ मैं भक्तिभाव से।
जीवन होवे सफल सभी का – इसी भाव से।।
अरे बोधपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
सभी भव्य जीवों को सम्यक् बोध दिया है ।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़परमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

अर्घ्यावली

।। बोधपाहुड़ ।।

(दोहा)

देव जिनेश्वर सर्व गुरु वंदूं मन-वच-काय।
जा प्रसाद भवि बोध लें, पालैं जीव निकाय।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब, सर्वप्रथम आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव आचार्यों के स्वरूपवर्णन के साथ उन्हें नमन कर ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं –

(हरिगीत)

शास्त्रज्ञ हैं सम्यक्त्व संयम शुद्धतप संयुक्त हैं।
कर नमन उन आचार्य को जो कषायों से रहित हैं।। १ ।।
अर सकलजन संबोधने जिनदेव ने जिनमार्ग में।
छहकाय सुखकर जो कहा वह मैं कहूँ संक्षेप में।। २ ।।

ॐ ह्रीं आचार्यनमनपूर्वकग्रन्थप्रतिज्ञानिरूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९६ ।।

अब, जिनका वर्णन आगे करना है – ऐसे ग्यारह स्थलों के नाम बताते हैं –

(हरिगीत)

ये आयतन अर चैत्यगृह अर शुद्ध जिनप्रतिमा कही।
दर्शन तथा जिनबिम्ब जिनमुद्रा विरागी ज्ञान ही।। ३ ।।

(गाथा)

बहुसत्थअत्थजाणे संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे।
वंदित्ता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे।। १ ।।
सयलजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।
वोच्छामि समासेण छक्कायसुहंकरं सुणह।। २ ।।
आयदणं चेदिहरं जिणपडिमा दंसणं च जिणबिंबं।
भणियं सुवीयरायं जिणमुद्दा णाणमादत्थं।। ३ ।।

हैं देव तीरथ और अर्हन् गुणविशुद्धा प्रव्रज्या।
अरिहंत ने जैसे कहे वैसे कहूँ मैं यथाक्रम।। ४ ।।

ॐ ह्रीं निरूपणीय एकादशस्थलप्ररूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं.. ।। ९७ ।।

अब, आयतन का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

आधीन जिनके मन–वचन–तन इन्द्रियों के विषय सब।
कहे हैं जिनमार्ग में वे संयमी ऋषि आयतन।। ५ ।।
हो गये हैं नष्ट जिनके मोह राग–द्वेष मद।
जिनवर कहें वे महाव्रतधारी ऋषि ही आयतन।। ६ ।।
जो शुक्लध्यानी और केवलज्ञान से संयुक्त हैं।
अर जिन्हें आतम सिद्ध है वे मुनिवृषभ सिद्धायतन।। ७ ।।

ॐ ह्रीं आयतनस्वरूपप्ररूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९८ ।।

अब, चैत्यगृह के स्वरूप का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

जानते मैं ज्ञानमय परजीव भी चैतन्यमय।
सद्ज्ञानमय वे महाव्रतधारी मुनी ही चैत्यगृह।। ८ ।।

(गाथा)

अरहंतेण सुदिट्ठं जं देवं तित्थमिह य अरहंतं।
पावज्जागुणविसुद्धा इय णायव्वा जहाकमसो।। ४।।
मणवयणकायदव्वा आयत्ता जस्स इन्दिया विसया।
आयदणं जिणमग्गे णिद्दिट्ठं संजयं रूवं।। ५ ।।
मयरायदोस मोहो कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।
पंचमहव्वयधारी आयदणं महरिसी भणियं।। ६ ।।
सिद्धं जस्स सदत्थं विसुद्धजाणस्स णाणजुत्तस्स।
सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं।। ७।।
बुद्धं जं बोहंतो अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च।
पंचमहव्वयसुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं।। ८ ।।

मुक्ति-बंधन और सुख-दुःख जानते जो चैत्य वे।
बस इसलिए षट्काय हितकर मुनी ही हैं चैत्यगृह।। ९ ।।

ॐ ह्रीं चैत्यगृहस्वरूपप्ररूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९९ ।।

अब, जिनप्रतिमा के स्वरूप का निरूपण करते हैं -

(हरिगीत)

सद्ज्ञानदर्शनचरण से निर्मल तथा निर्ग्रन्थ मुनि।
की देह ही जिनमार्ग में प्रतिमा कही जिनदेव ने।। १० ।।
जो देखे जाने रमे निज में ज्ञान-दर्शन-चरण से।
उन ऋषीगण की देह प्रतिमा वंदना के योग्य है।। ११ ।।
अनंतदर्शन-ज्ञान-सुख अर वीर्य से संयुक्त हैं।
हैं सदासुखमय देहबिन कर्माष्टकों से मुक्त हैं।। १२ ।।
अनुपम अचल अक्षोभ हैं लोकाग्र में थिर सिद्ध हैं।
जिनवर कथित व्युत्सर्ग प्रतिमा तो यही ध्रुव सिद्ध है।। १३ ।।
सम्यक्त्व संयम धर्ममय शिवमग बतावनहार जो।
वे ज्ञानमय निर्ग्रन्थ ही दर्शन कहे जिनमार्ग में।। १४ ।।

(गाथा)

चेइयं बंधं मोक्खं दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स।
चेइहरं जिणमग्गे छक्कायहियंकरं भणियं।। ९ ।।
सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।
णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमां।। १० ।।
जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ णिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
सा होई वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा।। ११ ।।
दंसणअणंतणाणं अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य।
सासयसुक्ख अदेहा मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं।। १२ ।।
णिरुवममचलमखोहा णिम्मिविया जंगमेण रूवेण।
सिद्धट्ठाणम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा।। १३ ।।
दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।
णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं।। १४ ।।

दूध घृतमय लोक में अर पुष्प हैं ज्यों गंधमय।
मुनिलिंगमय यह जैनदर्शन त्योंहि सम्यक् ज्ञानमय।। १५ ।।

ॐ ह्रीं जिनमुनिरेवजिनप्रतिमाप्ररूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १०० ।।

अब, जिनबिंब के स्वरूप का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

जो कर्मक्षय के लिए दीक्षा और शिक्षा दे रहे।
वे वीतरागी ज्ञानमय आचार्य ही जिनबिंब हैं।। १६ ।।
सद्ज्ञानदर्शन चेतनामय भावमय आचार्य को।
अतिविनय वत्सलभाव से वंदन करो पूजन करो।। १७ ।।
व्रत–तप गुणों से शुद्ध सम्यक्भाव से पहिचानते।
दें दीक्षा शिक्षा यही मुद्रा कही है अरिहंत की।। १८ ।।

ॐ ह्रीं आचार्यैवजिनबिंबप्ररूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १०१ ।।

अब, जिनमुद्रा का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

निज आतमा के अनुभवी इन्द्रियजयी दृढ़ संयमी।
जीती कषायें जिन्होंने वे मुनी जिनमुद्रा कही।।१९।।

ॐ ह्रीं जिनमुनिरेवजिनमुद्राप्ररूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १०२।।

(गाथा)

जह फुल्लं गंधमयं भवति हु खवीरंस घियमयं चावि।
तह दंसणं हि सम्मं णाणमयं होइ रूवत्थं।। १५।।
जिणबिंबं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च।
जं देह दिक्खसिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा।। १६।।
तस्स य करह पणामं सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।
जस्स य दंसण णाणं अत्थि धुवं चेयणाभावो।। १७।।
तववयगुणेहिं सुद्धो जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
अरहन्तमुद्द एसा दायारी दिक्खसिक्खा।। १८।।
दढसंजममुद्दाए इन्दियमुद्दा कसायदिढमुद्दा।
मुद्दा इह णाणो जिणमुद्रा एरिसा भणिया।। १९।।

अब, ज्ञान का निरूपण तथा उसकी महिमा को बताते हैं –

(हरिगीत)

संयमसहित निजध्यानमय शिवमार्ग ही प्राप्तव्य है।
सद्ज्ञान से हो प्राप्त इससे ज्ञान ही ज्ञातव्य है।। २० ।।

है असंभव लक्ष्य बिधना[१] बाणबिन अभ्यासबिन।
मुक्तिमग पाना असंभव ज्ञानबिन अभ्यासबिन।। २१ ।।

मुक्तिमग का लक्ष्य तो बस ज्ञान से ही प्राप्त हो।
इसलिए सविनय करें जन–जन ज्ञान की आराधना।। २२ ।।

मति धनुष श्रुतज्ञान डोरी रत्नत्रय के बाण हों।
परमार्थ का हो लक्ष्य तो मुनि मुक्तिमग नहीं चूकते।। २३ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपूर्वकज्ञानमहिमानिरूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि...।। १०३ ।।

अब, देव का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

धर्मार्थ कामरु ज्ञान देवे देव जन उसको कहें।
जो हो वही दे नीति यह धर्मार्थ कारण प्रव्रज्या।। २४ ।।

(गाथा)

संजमसंजुत्तस्स य सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स।
णाणेण लहदि लक्खं तम्हा णाणं च णायव्वं।। २०।।
जह णावि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्झयविहीणो।
तह णावि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स।। २१ ।।
णाणं पुरिस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स।। २२।।
मइधणुहं जस्स थिरं सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं।
परमत्थबद्धलक्खो णावि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स।। २३।।
सो देवो जो अत्थं धम्मं कामांशुदेइ णाणं च।
सो दइ जस्स अत्थि हु अत्थो धम्मो य पवज्जा।। २४ ।।

---

१. बाण द्वारा भेदा जाना

सब संग का परित्याग दीक्षा दयामय सद्धर्म हो।
अर भव्यजन के उदय कारक मोह विरहित देव हों।। २५ ।।

ॐ ह्रीं देवस्वरूपप्ररूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १०४ ।।

अब, तीर्थ का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

सम्यक्त्वव्रत से शुद्ध संवर सहित अर इन्द्रियजयी।
निरपेक्ष आतमतीर्थ में स्नान कर परिशुद्ध हों।। २६ ।।
यदि शान्त हों परिणाम निर्मलभाव हों जिनमार्ग में।
तो जान लो सम्यक्त्व संयम ज्ञान तप ही तीर्थ है।। २७ ।।

ॐ ह्रीं तीर्थस्वरूपनिरूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १०५ ।।

अब, आगे विस्तार से द्रव्य अरहंत का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

नाम थापन द्रव्य भावों और गुण-पर्याय से।
च्यवन आगति संपदा से जानिये अरिहंत को।। २८ ।।
अनंत दर्शन ज्ञानयुत आरूढ़ अनुपम गुणों में।
कर्माष्ट बंधन मुक्त जो वे ही अरे अरिहंत हैं।। २९ ।।

(गाथा)

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।
देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्वजीवाणं।। २५।।
वयसम्मत्तविसुद्धे पंचेंदियसंजदे णिरावेक्खे।
ण्हाएउ मुणी तित्थे, दिक्खासिक्खासुण्हाणेण।। २६।।
जं णिम्मलं सुधम्मं सम्मत्तं संजमं तवं णाणं।
तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ जदि सातिभावेण।। २७ ।।
णामे ठवणे हि संदव्वे भावे हि सगुणपज्जाया।
चउणागदि संपदिमे भावा भावंति अरहंतं।। २८।।
दंसण अणंत णाणे मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण।
णिरुवमगुणमारूढो अरहंतो एरिसो होइ।। २९।।

जन्ममरणजरा चतुर्गतिगमन पापरु पुण्य सब।
दोषोत्पादक कर्म नाशक ज्ञानमय अरिहंत हैं।। ३० ।।
गुणथान मार्गणथान जीवस्थान अर पर्याप्ति से।
और प्राणों से करो अरहंत की स्थापना।। ३१ ।।
आठ प्रातिहार्य अरु चौंतीस अतिशय युक्त हों।
सयोगकेवलि तेरवें गुणस्थान में अरहंत हों।। ३२ ।।
गतीन्द्रिय कायरु योग वेद कसाय ज्ञानरु संयमा।
दर्श लेश्या भव्य सम्यक् संज्ञिना आहार हैं।। ३३ ।।
आहार तन मन इन्द्रि श्वासोच्छ्वास भाषा छहों इन।
पर्याप्तियों से सहित उत्तम देव ही अरहंत हैं।। ३४ ।।
पंचेन्द्रियों मन-वचन-तन बल और श्वासोच्छ्वास भी।
अर आयु - इन दश प्राण में अरिहंत की स्थापना।। ३५ ।।
सैनी पंचेन्द्रियाँ नामक इन चतुर्दश जीवस्थान में।
अरहंत होते हैं सदा गुणसहित मानवलोक में।। ३६ ।।

(गाथा)

जरवाहिजम्ममरणं चउगइगमणं च पुण्णपावं च।
हंतूण दोसकम्मे हुउ णाणमयं च अरहंतो।। ३० ।।
गुणठाणमग्गणेहिं य पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं।
ठावण पंचविहेहिं पणयव्वा अरहपुरिसस्स।। ३१।।
तेरहमे गुणठाणे सजोइकेवलिय होइ अरहंतो।
चउतीस अइसयगुणा होंति हु तस्सट्ठ पडिहारा।। ३२।।
गइ इंदियं च काए जोए वेए कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेसा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे।। ३३ ।।
आहारे य सरीरो इंदियमणआणपाणभासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो हवइ अरहो।। ३४।।
पंच वि इंदियपाणा मणवयकाएण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दह पाणा।। ३५।।
मणुयभवे पंचिंदिय जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे।
एदे गुणगणजुत्तो गुणमारूढो हवइ अरहो।। ३६ ।।

व्याधी बुढ़ापा श्वेद मल आहार अर नीहार से।
थूक से दुर्गन्ध से मल-मूत्र से वे रहित हैं।। ३७ ।।

अठ सहस लक्षण सहित हैं अर रक्त है गोक्षीर सम।
दश प्राण पर्याप्ती सहित सर्वांग सुन्दर देह है।। ३८ ।।

इस तरह अतिशयवान निर्मल गुणों से सयुक्त हैं।
अर परम औदारिक श्री अरिहंत की नरदेह है।। ३९।।

ॐ ह्रीं द्रव्यअरहंतस्वरूपनिरूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १०६ ।।

अब, भाव अरहंत के स्वरूप का निरूपण करते हैं -

(हरिगीत)

राग-द्वेष विकार वर्जित विकल्पों से पार हैं।
कषायमल से रहित केवलज्ञान से परिपूर्ण हैं।। ४० ।।
सद्दृष्टि से सम्पन्न अर सब द्रव्य-गुण-पर्याय को।
जो देखते अर जानते जिननाथ वे अरिहंत हैं।। ४१ ।।

ॐ ह्रीं भावअरहंतस्वरूपप्ररूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १०७ ।।

(गाथा)

जरवाहिदुक्खरहियं आहारणिहारवज्जियं विमलं।
सिंहाण खेले सेओ णत्थि दुगुंछा य दोसो य।। ३७।।
दस पाणा पज्जती अट्ठसहस्सा य लक्खणा भणिया।
गोखीरसंखधवलं मंसं रुहिरं च सव्वंगे।। ३८।।
एरिसगुणेहिं सव्वं अइसयवंतं सुपरिमलामोयं।
ओरालियं च कायं णायव्वं अरहपुरिसस्स।। ३९ ।।
मयरायदोसरहिओ कसायमलवज्जिओ य सुविशुद्धो।
चित्तपरिणामरहिदो केवलभावे मुणेयव्वो।। ४०।।
सम्मद्दंसणि पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मत्तगुणविशुद्धो भावो अरहस्स णायव्वो।। ४१।।

अब, प्रव्रज्या (दीक्षा) योग्य स्थान का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

शून्यघर तरुमूल वन उद्यान और मसान में।
वसतिका में रहें या गिरिशिखर पर गिरिगुफा में।। ४२ ।।

चैत्य आलय तीर्थ वच स्ववशासक्तस्थान में।
जिनभवन में मुनिवर रहें जिनवर कहें जिनमार्ग में।। ४३ ।।

इन्द्रियजयी महाव्रतधनी निरपेक्ष सारे लोक से।
निजध्यानरत स्वाध्यायरत मुनिश्रेष्ठ ना इच्छा करें।। ४४ ।।

ॐ ह्रीं प्रव्रज्यायोग्यस्थाननिरूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १०८ ।।

अब, प्रव्रज्या का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

परिषहजयी जितकषायी निर्ग्रन्थ है निर्मोह है।
है मुक्त पापारंभ से ऐसी प्रव्रज्या जिन कही।। ४५ ।।

धन–धान्य पट अर रजत–सोना आसनादिक वस्तु के।
भूमि चंवर–छत्रादि दानों से रहित हो प्रव्रज्या।। ४६ ।।

(गाथा)

सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जाणे तह मसाणवासे वा।
गिरिगुह गिरिसिहरे वा भीमवणे अहव वसिते वा।। ४२ ।।
सवसासत्तं तित्थं वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।
जिणभवं अह बेज्झं जिणमग्गे जिणवरा विंति।। ४३।।
पंचमहव्वयजुत्ता पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता मुणिवरवसहा णिइच्छन्ति।। ४४।।
गिहगंथमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकषाया।
पावारंभविमुक्का पव्वज्जा एरिसा भणिय।। ४५ ।।
धणधण्णवत्थदाणं हिरण्णसयणासणाइ छत्ताइं।
कुद्दाणविरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया।। ४६।।

जिनवर कही है प्रव्रज्या समभाव लाभालाभ में।
अर कांच-कंचन मित्र-अरि निन्दा-प्रशंसा भाव में।। ४७ ।।
प्रव्रज्या जिनवर कही सम्पन्न हों असंपन्न हों।
उत्तम मध्यम घरों में आहार लें समभाव से।। ४८ ।।
निर्ग्रन्थ है नि:संग है निर्मान है नीराग है।
निर्दोष है निरआश है जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।। ४९ ।।
निर्लोभ है निर्मोह है निष्कलुष है निर्विकार है।
निस्नेह निर्मल निराशा जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।। ५० ।।

ॐ ह्रीं प्रव्रज्यास्वरूपप्ररूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १०९ ।।

अब, दीक्षा का बाह्यस्वरूप कहते हैं -

(हरिगीत)

शान्त है है निरायुध नग्नत्व अवलम्बित भुजा।
आवास परकृत निलय में जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।। ५१ ।।
उपशम क्षमा दम युक्त है श्रृंगारवर्जित रूक्ष है।
मद-राग-रुस से रहित है जिनप्रव्रज्या ऐसी कही।। ५२ ।।

(गाथा)

सत्तूमित्ते य समा पसंसणिंदा अलद्धिलद्धिसमा।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया।। ४७ ।।
उत्तममज्झिमगेहे दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा।
सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया।। ४८ ।।
णिग्गंथा णिस्संगा णिम्माणासा अराय णिद्दोसा।
णिम्मम णिरहंकारा पव्वज्जा एरिसा भणिया।। ४९ ।।
णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया।। ५० ।।
जहजायरूवसरिसा अवलंबियभुय णिराउहा संता।
परकियणिलयणिवासा पव्वज्जा एरिसा भणिया।। ५१ ।।
उवसमखमदमजुत्ता सरीरसंकारवज्जिया रुक्खा।
मयरायदोसरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया।। ५२ ।।

मूढ़ता विपरीतता मिथ्यापने से रहित है।
सम्यक्त्व गुण से शुद्ध है जिन प्रवज्या ऐसी कही।। ५३ ।।

जिनमार्ग में यह प्रव्रज्या निर्ग्रन्थता से युक्त है।
भव्य भावे भावना यह कर्मक्षय कारण कही।। ५४ ।।

जिसमें परिग्रह नहीं अन्तर्बाह्य तिलतुषमात्र भी।
सर्वज्ञ के जिनमार्ग में जिनप्रव्रज्या ऐसी कही।। ५५ ।।

परिषह सहें उपसर्ग जीतें रहें निर्जन देश में।
शिला पर या भूमितल पर रहें वे सर्वत्र ही।। ५६ ।।

पशु-नपुंसक-महिला तथा कुश्शीलजन की संगति।
ना करें विकथा ना करें रत रहें अध्ययन-ध्यान में।। ५७ ।।

सम्यक्त्व संयम तथा व्रत-तप गुणों से सुविशुद्ध हो।
शुद्ध हो सद्गुणों से जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।। ५८ ।।

ॐ ह्रीं दीक्षाबाह्यस्वरूपनिरूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ११० ।।

(गाथा)

विवरीयमूढभावा पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता।
सम्मत्तगुणविसुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया।। ५३ ।।
जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।
भावंति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया।। ५४ ।।
तिलतुसमत्तणिमित्तसम बाहिरग्गंधसंगहो णत्थि।
पव्वज्ज हवइ एसा जह भणिया सव्वदरसीहिं।। ५५ ।।
उवसग्गपरिसहसहा णिज्जणदेसे हि णिच्च अत्थइ।
सिल कट्ठे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ।। ५६ ।।
पसुमहिलसंढसंगं कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।
सज्झायझाणजुत्ता पव्वज्जा एरिसा भणिया।। ५७ ।।
तववयगुणेहिं सुद्धा संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य।
सुद्धा गुणेहिं सुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया।। ५८ ।।

अब, पूर्व में वर्णित ग्यारह स्थलों के कथन को संक्षेप में कहते हैं –

(हरिगीत)

आयतन से प्रव्रज्या तक यह कथन संक्षेप में।
सुविशुद्ध समकित सहित दीक्षा यों कही जिनमार्ग में।। ५९ ।।

ॐ ह्रीं एकादशस्थल निरूपणसंक्षेपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि.... ।। १११ ।।

अब, बोधपाहुड़ का संक्षिप्तिकरण करते हैं –

(हरिगीत)

षट्काय हितकर जिसतरह ये कहे हैं जिनदेव ने।
बस उसतरह ही कहे हमने भव्यजन संबोधने।। ६० ।।

ॐ ह्रीं बोधपाहुड़-उपसंहारक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ११२ ।।

अब, बोधपाहुड़ की प्रामाणिकता को बताते हैं –

(हरिगीत)

जिनवरकथित शब्दत्वपरिणत समागत जो अर्थ है।
बस उसे ही प्रस्तुत किया भद्रबाहु के इस शिष्य ने।। ६१ ।।

ॐ ह्रीं बोधपाहुड़स्य प्रमाणिकताप्ररूपक श्रीबोधपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं... ।। ११३ ।।

अब, अंत में भद्रबाहु स्वामी की स्तुतिरूप वचन कहते हैं –

(हरिगीत)

अंग बारह पूर्व चउदश के विपुल विस्तार विद।
श्री भद्रबाहु गमकगुरु जयवंत हो इस जगत में।। ६२ ।।

ॐ ह्रीं श्रुतकेवलीभद्रबाहुस्वामिने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११४ ।।

(गाथा)

एवं आयत्तणगुणपज्जंता बहुविसुद्धसम्मत्ते।
णिग्गंथे जिणमग्गे संखेवेणं जहाखादं।। ५९।।
रूवत्थं सुद्धत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।
भव्वजणबोहणत्थं छक्कायहियंकरं उत्तं।। ६० ।।
सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स।। ६१।।
बारसअंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयउ।। ६२ ।।

जयमाला

(दोहा)

पूजन अर अर्घावली पूरण हुई सुबोध।
जयमाला में आयगा अनुपम सम्यक् बोध।। १ ।।

(रोला)

अरे बोधपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
ग्यारह स्थल में बाँटा है विषयवस्तु को।।
अरे *आयतन* पहला स्थल मुनिराज हैं।
मुनिराज में सभी धर्म आकर बसते हैं।। २ ।।

जिनमें रहते सभी धर्म वे धर्म-आयतन।
क्रोधादिक विकार भी जिनके क्षीण हो गये।।
पंच महाव्रतधारी हैं वे परम अहिंसक।
महामुनि ही जग में केवल धर्म आयतन।। ३ ।।

अरे *चैत्यगृह* को बतलाया दूजा स्थल।
और चैत्यगृह चैत्यालय ही समझो भाई।।
मुनिराज ही शुद्ध आतमा के आलय हैं।
अतः उन्हीं को यहाँ चैत्यगृह कहा गया है।। ४ ।।

अरे तीसरा स्थल है श्री *जिनप्रतिमा* का।
जिसमें निश्चय प्रतिमा का स्वरूप समझाया।।
परमवीतरागी निर्मल रत्नत्रय धारी।
नग्न दिगम्बर मुनिराज जंगम प्रतिमा हैं।। ५ ।।

अरे देह से मुक्त विदेही अचल अनूपम।
जो अनन्त दर्शन सुख वीरज को धरते हैं।।
थिर रहते हैं अरे निरन्तर इसीलिये वे।
थिर प्रतिमा कहलाते हैं रे सिद्ध जिनेश्वर।। ६ ।।

चौथा स्थल अरे कहें *दर्शन* को भाई!
निर्ग्रन्थों को दर्शन इसमें कहा गया है।।
इनमें ही शामिल होते हैं अरे बन्धुवर।
सभी संयमी ऐलक छुल्लक और आर्यिका।। ७।।

पंचम स्थल *जिनबिम्बों* का कहा गया है।
निश्चय से जिनबिंब स्वयं आचार्यदेव हैं।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित से मंडित हैं वे।
अर सुयोग्य पुरुषों को शिक्षा-दीक्षा देते।। ८।।

छटवाँ स्थल *जिनमुद्रा* को कहा गया है।
जिनमुद्रा भी परम संयमी श्री मुनिवर हैं।।
काबू हो कषाय भावों पर इन्द्रिजयी हो।
वे ज्ञानी मुनिवर ही जिनमुद्रा धारी हैं।। ९।।

अरे सातवाँ स्थल मुनिवर *ज्ञान* कहा है।
संयम से संयुक्त ज्ञान तो ध्यान रूप है।।
विनयभाव से युक्त पुरुष को ज्ञान प्राप्त हो।
मुक्तिमार्ग तो ज्ञान-ध्यान-संयम स्वरूप है।। १०।।

और आठवाँ स्थल तो श्री *देव* कहा है।
धर्म-अर्थ अर काम-मोक्ष देवे सो देव है।।
अरे जिनेश्वरदेव देव हैं इस जगती में।
वे सबको सन्मार्ग बताते दिव्यध्वनि से।। ११।।

नौवाँ स्थल कुन्दकुन्दमुनि *तीर्थ* कहा है।
और आत्मा का स्वभाव ही तीरथ जानो।।
तथा आत्मा के आश्रय से होने वाले।
ज्ञान ध्यान संयम समकित सब तीरथ मानो।। १२।।

दशवाँ स्थल श्री *अरहंतदेव* को जानो।
वीतराग-सर्वज्ञ सभी अरहंतदेव हैं।।
तीर्थंकर अरहंत सभी के उपकारी हैं।
दिव्यध्वनि के द्वारा सबको समझाते हैं।। १३ ।।

तेरहवें गुणथानक में रहते हैं जिनवर।
चौतीस अतिशय एवं आठ प्रातिहार्य हैं।।
अनंत चतुष्टय से मंडित भगवन्त विराजे।
शत इन्द्रों से वंदित श्री शोभायमान हैं।। १४ ।।

इनकी दिव्यध्वनि से जिनशासन चलता है।
अगणित भविजन भवसागर से पार उतरते।।
विकट भवोदधि की भवरों में फँसे हुये जन।
जपकर इनका नाम भवोदधि पार उतरते।। १५ ।।

ग्यारहवाँ स्थल है जिसे *प्रव्रज्या* कहते।
इसको ही श्री कुन्दकुन्द कहते जिनदीक्षा।।
सभी परिग्रह और निज निलय त्यागी मुनिवर।
आतमहित के लिये इसे धारण करते हैं।। १६ ।।

अरे प्रव्रज्याधारी रखते मित्र-शत्रु में।
समताभाव कँचन-काँच अर लाभालाभ में।।
और प्रशंसा-निंदा में भी समता रखते।
हर हालत में रहते हैं वे शान्तभाव में।। १७ ।।

रहते हैं निर्मोह सदा निर्मानी रहते।
निर्नेही निर्लोभी निर्भय और विरागी।।
रहते हैं वे नग्न दिगम्बर सदा स्वयं में।
पर से सदा विरक्त और आतम अनुरागी।। १८ ।।

दीक्षाधारी मुनिवर होते क्षमदमयुक्ता।
रूखी-सूखी मलिन देह को कौन संवारे।
सम्यग्दर्शनयुक्त ज्ञान के धारी मुनिवर।
अरे निरन्तर अपना आतमराम संवारे।। १९ ।।

तिल-तुष मात्र परीग्रह जिनके पास न होवे।
निर्जन वन में रहें अकेले नग्न दिगम्बर।।
शिला भूमि या लकड़ी पर बैठें सोते हैं।
उनके पास नहीं होता है कोइ अडम्बर।। २० ।।

सभी प्रव्रज्याधारी मुनिवर परम तपस्वी।
विकथाओं में कभी न अपना समय गमाते।।
महिलाओं से दूर रहें न करें कुसंगति।
अरे निरन्तर ज्ञान-ध्यान में समय बिताते।। २१ ।।

अरे दिव्यध्वनि में जिनवर ने जो बतलाया।
वही तत्त्व जिन परम्परा से हम तक आया।।
उसको प्रस्तुत किया गया है सहजभाव से।
कल्पित करके हमने कुछ भी नहीं मिलाया।। २२ ।।

भद्रबाहु श्रुतकेवलि अति ही भद्रपुरुष हैं।
द्वादशांग के पाठी मुनिवर परम दिगम्बर।।
वही हमारे 'गमकगुरु' हैं - भक्ति भाव से।
कहते हैं श्री कुन्दकुन्द मुनि नग्न दिगम्बर।। २३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीबोधपाहुड़ाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

इसप्रकार पूरा हुआ शिवमग का आधार।
परम दिगम्बर धर्म का बोध बढ़ावन हार।। २४ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

६

भावपाहुड़ पूजन

स्थापना

(दोहा)

परमभाव की साधना परमधर्म का मर्म।
परमभाव की भावना ही सच्चा जिनधर्म।। १ ।।
शुद्धातम की साधना से होवे निष्कर्म।
शुद्धभाव सत्कर्म हैं शुद्धभाव ही धर्म।। २ ।।
पुण्य-पाप के भाव सब कहे गये हैं कर्म।
कर्मबंध के हेतु हैं नहीं काटते कर्म।। ३ ।।
पुण्य-पाप से विरत हो एक आतमा राम।
को ध्यावो तो प्राप्त हों वीतराग-परिणाम।। ४ ।।
वीतराग-परिणाम ही एकमात्र हैं सार।
वीतराग-परिणाम की महिमा अपरंपार।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागम! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागम!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागम!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रेखता)

जल

नहीं हैं जिसमें कोई जन्तु क्षीरसागर का निर्मल नीर।
समर्पण करता हूँ जिनराज शान्त हो जावे भव की पीर।।
भाव से बंध भाव से मोक्ष भाव की महिमा अपरंपार।
भाव से भवसागर में रुलें भाव से हो जावे भव पार।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागमाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन

मलयगिरि का सा मलय समीर शान्त करता जग का संताप।
समर्पण करता हूँ जिनराज शान्त होवे भव का आताप।।
भाव से बंध भाव से मोक्ष भाव की महिमा अपरंपार।
भाव से भवसागर में रुलें भाव से हो जावे भव पार।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

अरे अक्षत अज आतमराम आदि से रहित अनादि–अनन्त।
समर्पण करता हूँ जिनराज अरे आ जावे भव का अंत ।।
भाव से बंध भाव से मोक्ष भाव की महिमा अपरंपार।
भाव से भवसागर में रुलें भाव से हो जावे भव पार।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

यद्यपि मन को मोहित करे अरे सुमनों की मनहर गंध।
किन्तु इस आतम का भगवंत नहीं मन से कोई संबंध ।।
भाव से बंध भाव से मोक्ष भाव की महिमा अपरंपार।
भाव से भवसागर में रुलें भाव से हो जावे भव पार।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

अरे ये जड़ पुद्गल के पिण्ड विविधविध मधुर मिष्ट पकवान।
न इनसे क्षुधा शान्त होती समर्पण करता हूँ भगवान।।
भाव से बंध भाव से मोक्ष भाव की महिमा अपरंपार।
भाव से भवसागर में रुलें भाव से हो जावे भव पार।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

विविधविध रत्नों से निर्मित अरे यह सम्यग्ज्ञान प्रतीक।
मोहतम नाशक प्रखर प्रदीप समर्पण करता रहूँ सदीव।।
भाव से बंध भाव से मोक्ष भाव की महिमा अपरंपार।
भाव से भवसागर में रुलें भाव से हो जावे भव पार।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागमाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

धूम से धूम मचाती धूप जगत को करती है निर्जन्तु।
कर्म निष्कर्म नहीं होते भूमि हो जाती है निर्जन्तु।।
भाव से बंध भाव से मोक्ष भाव की महिमा अपरंपार।
भाव से भवसागर में रुलें भाव से हो जावे भव पार।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

अरे रे पुण्य-पाप के भाव जगत में फलते हैं भवरूप।
परन्तु वीतराग परिणाम पार करते हैं भव का कूप।।
भाव से बंध भाव से मोक्ष भाव की महिमा अपरंपार।
भाव से भवसागर में रुलें भाव से हो जावे भव पार।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

अरे यह द्रव्य भावमय अर्घ्य समर्पण करता हूँ भगवन्त।
नहीं है अन्य चाह कुछ भी चाहता हूँ बस भव का अन्त।।
भाव से बंध भाव से मोक्ष भाव की महिमा अपरंपार।
भाव से भवसागर में रुलें भाव से हो जावे भव पार।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

अर्घ्यावली

।। भावपाहुड़ ।।

(दोहा)

परमातमकूं वंदिकरि शुद्धभावकरतार।
करूं भावपाहुड़तर्णी देशवचनिका सार।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब, सर्वप्रथम आचार्य इष्ट के नमस्काररूप मंगल करके ग्रंथ करने की प्रतिज्ञा करते हैं –

(हरिगीत)

सुर–असुर–इन्द्र–नरेन्द्र वंदित सिद्ध जिनवरदेव अर।
सब संयतों को नमन कर इस भावपाहुड़ को कहूँ।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठीभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११५ ।।

अब, लिंग के दो भेद बताकर भावलिंग को परमार्थ बताते हैं –

(हरिगीत)

बस भाव ही गुण–दोष के कारण कहे जिनदेव ने।
भावलिंग ही परधान हैं द्रव्यलिंग न परमार्थ है।। २ ।।

ॐ ह्रीं लिंगभेदप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ११६ ।।

(गाथा)

णमिऊण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे।
वोच्छामि भावपाहुड़मवसेसे संजदे सिरसा।। १ ।।
भावो हि पढमलिंगं ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो गुणदोसाणं जिणा बेन्ति।। २ ।।

अब, अंतरंगपरिग्रह के त्याग की उपादेयता को बताते हैं –

(हरिगीत)

अर भावशुद्धि के लिए बस परीग्रह का त्याग हो।
रागादि अन्तर में रहें तो विफल समझो त्याग सब।। ३ ।।

ॐ ह्रीं अंतरंगपरिग्रहत्यागोपादेयत्वप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। ११७।।

अब, भावलिंग की उपादेयता को बताते हैं –

(हरिगीत)

वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ाकोड़ि वर्षों तप करें।
पर भाव बिन ना सिद्धि हो सत्यार्थ यह जिनवर कहें।। ४ ।।

परिणामशुद्धि के बिना यदि परीग्रह सब छोड़ दें।
तब भी अरे निज आत्महित का लाभ कुछ होगा नहीं।। ५ ।।

प्रथम जानो भाव को तुम भाव बिन द्रवलिंग से।
तो लाभ कुछ होता नहीं पथ प्राप्त हो पुरुषार्थ से।। ६ ।।

भाव बिन द्रवलिंग अगणित धरे काल अनादि से।
पर आजतक हे आत्मन् ! सुख रंच भी पाया नहीं।। ७ ।।

(गाथा)

भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स।। ३ ।।
भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।
जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो।। ४ ।।
परिणाममम्मि असुद्धे गंथे मुञ्चेइ बाहिरे य जई।
बाहिरगंथच्चाओ भावविहूणस्स किं कुणइ।। ५ ।।
जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण।
पंथिय सिवपुरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण।। ६ ।।
भावरहिएण सपुरिस अणाइकालं अणंतसंसारे।
गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं।। ७ ।।

भीषण नरक तिर्यंच नर अर देवगति में भ्रमण कर।
पाये अनन्ते दु:ख अब भावो जिनेश्वर भावना।। ८ ।।

ॐ ह्रीं भावलिंगस्योपादेयत्वप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि.।। ११८ ।।

अब, चार गति के दु:खों का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

इन सात नरकों में सतत चिरकाल तक हे आत्मन्।
दारुण भयंकर अर असह्य महान दु:ख तूने सहे।। ९ ।।

तिर्यंचगति में खनन उत्तापन जलन अर छेदना।
रोकना वध और बंधन आदि दुख तूने सहे।। १० ।।

मानसिक देहिक सहज एवं अचानक आ पड़े।
ये चतुर्विध दुख मनुजगति में आत्मन् तूने सहे।। ११ ।।

हे महायश सुरलोक में परसंपदा लखकर जला।
देवांगना के विरह में विरहाग्नि में जलता रहा।। १२ ।।

ॐ ह्रीं चतुर्गतिदु:खनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि..।। ११९।।

(गाथा)

भीसणणरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए।
पत्तो सि तिव्वदुक्खं भावहि जिणभावणा जीव।। ८।।
सत्तसु णरयावासे दारुणभीमाइं असहणीयाइं।
भुत्ताइं सुइरकालं दु:क्खाइं णिरंतरं अहियं।। ९ ।।
खणणुत्तावणवालणवेयणविच्छेयणाणिरोहं च।
पत्तो सि भावरहिओ तिरियगईए चिरं कालं।। १०।।
आगंतुक माणसियं सहजं सारीरियं च चत्तारि।
दुक्खाइं मणुयजम्मे पत्तो सि अणंतयं कालं।। ११।।
सुरणिलयेसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं तिव्वं।
संपत्तो सि महाजस दु:खं सुहभावणारहिओ।। १२।।

अब, अशुभभावना और उसके फल का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

पंचविध कांदर्पि आदि भावना भा अशुभतम।
मुनि द्रव्यलिंगीदेव हों किल्विषिक आदिक अशुभतम।। १३ ।।

पार्श्वस्थ आदि कुभावनायें भवदु:खों की बीज जो।
भाकर उन्हें दुख विविध पाये विविध वार अनादि से।। १४ ।।

निज हीनता अर विभूति गुण–ऋद्धि महिमा अन्य की।
लख मानसिक संताप हो है यह अवस्था देव की।। १५ ।।

चतुर्विध विकथा कथा आसक्त अर मदमत्त हो।
यह आतमा बहुबार हीन कुदेवपन को प्राप्त हो।। १६ ।।

ॐ ह्रीं अशुभभावनाफलप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १२० ।।

अब, मनुष्य और तिर्यंचों के जन्म–मरण सम्बन्धी दु:खों का वर्णन करते हैं – (हरिगीत)

फिर अशुचितम वीभत्स जननी गर्भ में चिरकाल तक।
दुख सहे तूने आजतक अज्ञानवश हे मुनिप्रवर।। १७ ।।

(गाथा)

कंदप्पमाइयाओ पंच वि असुहादिभावणाई य।
भाऊण दव्वलिंगी पहीणदेवो दिवे जाओ।। १३।।
पासत्थभावणाओ अणाइकालं अणेयवाराओ।
भाऊण दुहं पत्तो कुभावणाभावबीएहिं।। १४।।
देवाण गुण विहूई इड्ढी माहप्प बहुविहं दट्ठुं।
होऊण हीणदेवोपत्तो बहु माणसं दुक्खं।। १५।।
चउविहविकहासत्तो मयमत्तो असुहभावपयडत्थो।
होऊण कुदेवत्तं पत्तो सि अणेयवाराओ।। १६।।
असुईबीहत्थेहि य कलिमलबहुलाहि गब्भवसहीहि।
वसिओ सि चिरं कालं अणेयजणणीण मुणिपवर।। १७।।

अरे तू नरलोक में अगणित जनम धर-धर जिया।
हो उदधि जल से भी अधिक जो दूध जननी का पिया।। १८ ।।

तेरे मरण से दुखित जननी नयन से जो जल बहा।
वह उदधिजल से भी अधिक यह वचन जिनवर ने कहा।। १९ ।।

ऐसे अनन्ते भव धरे नरदेह के नख-केश सब।
यदि करे कोई इकट्ठे तो ढेर होवे मेरु सम।। २० ।।

परवश हुआ यह रह रहा चिरकाल से आकाश में।
थल अनल जल तरु अनिल उपवन गहन वन गिरि गुफा में।। २१ ।।

ॐ ह्रीं संसारस्य जन्म-मरणदुःखनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १२१ ।।

अब, संसार के क्षुधा-तृषादि दुःखों का वर्णन करते हैं -

(हरिगीत)

पुद्गल सभी भक्षण किये उपलब्ध हैं जो लोक में।
बहु बार भक्षण किये पर तृप्ति मिली न रंच भी।। २२ ।।

त्रैलोक्य में उपलब्ध जल सब तृषित हो तूने पिया।
पर प्यास फिर भी ना बुझी अब आत्मचिंतन में लगो।। २३ ।।

(गाथा)

पीओ सि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणाणीणं।
अण्णाण्णाण महाजस सायरसलिलादु अहिययरं।। १८।।
तुह मरणे दुक्खेण अण्णाण्णाणं अणेयजणाणीणं।
रुण्णाण णयणणीर सायरसलिलादु अहिययरं।। १९।।
भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय केसणाहरणालट्ठी।
पुञ्जइ जइ को वि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी।। २०।।
जलथलसिहिपवणंवरगिरिसरिदरितरुवणाइ सव्वत्थ।
वसिओ सि चिरं कालं तिहुवणमज्झे अणप्पवसो।। २१।।
गसियाइं पुग्गलाइं भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइं।
पत्तो सि तो ण तित्तिं पुणरुत्तं ताइं भुञ्जंतो।। २२।।
तिहुयणसलिलं सयलं पीयं तिण्हाए पीडिएण तुमे।
तो वि ण तण्हाछेओ जाओ चिंतेह भवमहणं।। २३।।

जिस देह में तू रम रहा ऐसी अनन्ती देह तो।
मूरख अनेकों बार तूने प्राप्त करके छोड़ दीं।। २४ ।।

ॐ ह्रीं संसारस्य क्षुधादिदुःखनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि...।। १२२।।

अब, आगे आयुक्षय के निमित्त से होने वाले कुमरण सम्बन्धी दुःखों का वर्णन करते हैं – (हरिगीत)

शस्त्र श्वासनिरोध एवं रक्तक्षय संक्लेश से।
अर जहर से भय वेदना से आयुक्षय हो मरण हो।। २५ ।।

अनिल जल से शीत से पर्वतपतन से वृक्ष से।
परधनहरण परगमन से कुमरण अनेक प्रकार हो।। २६ ।।

हे मित्र ! इस विधि नरगति में और गति तिर्यंच में।
बहुविध अनंते दुःख भोगे भयंकर अपमृत्यु के।। २७ ।।

ॐ ह्रीं कुमरणसम्बन्धीदुःखप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १२३ ।।

अब, निगोद के दुःखों को कहते हैं –

(हरिगीत)

इस जीव ने नीगोद में अन्तरमुहूरत काल में।
छ्यासठ सहस अर तीन सौ छत्तीस भव धारण किये।। २८ ।।

(गाथा)

गहिउज्झियाइं मुणिवर कलेवराइं तुमे अणेयाइं।
ताणं णत्थि पमाणं अणंतभवसायरे धीर।। २४।।
विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसेणं।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ।। २५।।
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं।
रसविज्जजोयधारण अणयपसंगेहिं विविहेहिं।। २६।।
इय तिरियमणुयजम्मे सुइरं उववज्झिऊण बहुवारं।
अवमिच्चुमहादुक्खं तिव्वं पत्तो सि तं मित्त।। २७।।
छत्तीस तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तो सि निगोयवासम्मि।। २८।।

विकलत्रयों के असी एवं साठ अर चालीस भव।
चौबीस भव पंचेन्द्रियों अन्तरमुहूरत छुद्रभव।। २९ ।।

ॐ ह्रीं निगोदस्य दुःखप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १२४ ।।

अब, रत्नत्रयधारण करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

रतन त्रय के बिना होता रहा है यह परिणमन।
तुम रतन त्रय धारण करो बस यही है जिनवर कथन।। ३० ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १२५ ।।

अब, रत्नत्रय का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

निज आतमा को जानना सद्ज्ञान रमना चरण है।
निज आतमारत जीव सम्यग्दृष्टि जिनवर कथन है।। ३१ ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयस्वरूपनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १२६ ।।

अब, सुमरण (समाधिमरण) की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

तूने अनन्ते जनम में कुमरण किये हे आत्मन्।
अब तो समाधिमरण की भा भावना भवनाशनी।। ३२ ।।

ॐ ह्रीं समाधिमरणप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १२७ ।।

(गाथा)

वियलिंदए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेह।
पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतोमुहुत्तस्स ।। २९ ।।
रयणत्तये अलद्धे एवं भमिओ सि दीहसंसारे।
इय जिणवरहिं भणियं तं रयणत्तय समायरह।। ३० ।।
अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं चरदिहं चारित्त मग्गो त्ति।। ३१ ।।
अण्णे कुमरणमरणं अणेयजम्मंतराइं मरिओ सि।
भावहि सुमरणमरणं जरमरणविणासणं जीव!।। ३२ ।।

अब, भावलिंग के बिना होनेवाले दुःख का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

धरकर दिगम्बर वेष बारम्बार इस त्रैलोक में।
स्थान कोई शेष ना जन्मा–मरा ना हो जहाँ।। ३३ ।।

रे भावलिंग बिना जगत में अरे काल अनंत से।
हा ! जन्म और जरा–मरण के दुःख भोगे जीव ने।। ३४ ।।

परिणाम पुद्गल आयु एवं समय काल प्रदेश में।
तनरूप पुद्गल ग्रहे–त्यागे जीव ने इस लोक में।। ३५ ।।

बिन आठ मध्यप्रदेश राजू तीन सौ चालीस त्रय।
परिमाण के इस लोक में जन्मा–मरा न हो जहाँ।। ३६ ।।

एक–एक अंगुलि में जहाँ पर छयानवें हों व्याधियाँ।
तब पूर्ण तन में तुम बताओ होंगी कितनी व्याधियाँ।। ३७ ।।

पूर्वभव में सहे परवश रोग विविध प्रकार के।
अर सहोगे बहु भाँति अब इससे अधिक हम क्या कहें?।। ३८ ।।

(गाथा)

सो णत्थि दव्वसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।
जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोयपमाणिओ सव्वो।। ३३।।
कालमणंतं जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं।
जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण।। ३४।।
पडिदेससमयपुग्गल आउगपरिणामणामकालट्ठं।
गहिउज्झियाइं बहुसो अणंतभवसायरे जीव।। ३५।।
तेयाला तिण्णि सया रज्जूणं लोयखेत्तपरिमाणं।
मुत्तूणट्ठपएसा जत्थ ण दुरुदुल्लिओ जीवो।। ३६।।
एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिय।। ३७।।
ते रोया वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्वभवे।
एवं सहसि महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं।। ३८।।

कृमिकलित मज्जा-मांस-मज्जित मलिन महिला उदर में।
नवमास तक कई बार आतम तू रहा है आजतक।। ३९ ।।

तू रहा जननी उदर में जो जननि ने खाया-पिया।
उच्छिष्ट उस आहार को ही तू वहाँ खाता रहा।। ४० ।।

शिशुकाल में अज्ञान से मल-मूत्र में सोता रहा।
अब अधिक क्या बोलें अरे मल-मूत्र ही खाता रहा।। ४१ ।।

ॐ ह्रीं भावलिंगविनादुःखनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १२८ ।।

अब, इस शरीर का स्वरूप बताते हैं -

(हरिगीत)

यह देह तो बस हड्डियों श्रोणित बसा अर माँस का।
है पिण्ड इसमें तो सदा मल-मूत्र का आवास है।। ४२ ।।

ॐ ह्रीं देहस्वरूपनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १२९ ।।

अब, भावों से छूटे हुये को ही छूटा कहते हैं -

(हरिगीत)

परिवारमुक्ती मुक्ति ना मुक्ती वही जो भाव से।
यह जानकर हे आत्मन् ! तू छोड़ अन्तरवासना।। ४३ ।।

ॐ ह्रीं भावमुक्तिप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १३० ।।

(गाथा)

पित्तंतमुत्तफेफ्फसकालिज्जयरुहिरखरिसकिमिलजाले।
उयरे वसिओ सि चिरं णवदसमासेहिं पत्तेहिं।। ३९।।
दियसंगट्ठियमसणं आहारिय मायभुत्तमण्णांते।
छद्दिखरिसाण मज्झे जढरे वसिओ सि जणाणीए।। ४०।।
सिसुकाले च अयाणे असुईमज्झम्मि लोलिओ सि तुमं।
असुई असिया बहुसो मुणिवर बालत्तपत्तेण।। ४१।।
मंसट्ठिसुक्कसोणियपित्तंतसवत्तकुणिमदुग्गंधं।
खरिसवसापूय खिब्भिस भरियं चित्तेहि देहउडं।। ४२।।
भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण।
इय भाविऊण उज्झसु गंधं अब्भंतरं धीर।। ४३।।

अब, विविध मुनिराजों के उदाहरण देकर भावमुक्त होने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

बाहुबली ने मान बस घरवार ही सब छोड़कर।
तप तपा बारह मास तक ना प्राप्ति केवलज्ञान की।। ४४ ।।

तज भोजनादि प्रवृत्तियाँ मुनिपिंगला रे भावविन।
अरे मात्र निदान से पाया नहीं श्रमणत्व को।। ४५ ।।

इस ही तरह मुनि वशिष्ठ भी इस लोक में थानक नहीं।
रे एक मात्र निदान से घूमा नहीं हो वह जहाँ।। ४६ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपुरस्सर – भावमुक्तिप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १३१ ।।

अब, यह जीव भावरहित होकर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है– यह बताते हैं –

(हरिगीत)

चौरासिलख योनीविषें है नहीं कोई थल जहाँ।
रे भावबिन द्रवलिंगधर घूमा नहीं हो तू जहाँ।। ४७ ।।

ॐ ह्रीं चतुरशीतिलक्षयोनिपरिभ्रमणकारणनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १३२ ।।

(गाथा)

देहादिचत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर!।
अत्तावणेण जादो बाहुबली कित्तियं कालं।। ४४।।
महुपिंगो णाम मुणी देहाहारादिचित्तवावारो।
सवणत्तणं ण पत्तो णियाणमित्तेण भवियणुय।। ४५।।
अण्णं च वसिट्ठमुणी पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।
सो णत्थि वासठाणो जत्थ ण दुरुदुल्लिओ जीवो।। ४६।।
सो णत्थि तप्पएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।
भावविरओ वि सवणो जत्थ णं दुरुदुल्लिओ जीव।। ४७।।

अब, ''भावलिंग ही लिंग है'' – यह बताते हैं –

(हरिगीत)

भाव से ही लिंगी हो द्रवलिंग से लिंगी नहीं।
लिंगभाव ही धारण करो द्रवलिंग से क्या कार्य हो।। ४८ ।।

ॐ ह्रीं भावलिंग एव लिंग-इतिप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि.. ।। १३३ ।।

अब, द्रव्यलिंग के धारी मुनिराजों का दृष्टान्त देते हैं –

(हरिगीत)

जिनलिंग धरकर बाहुमुनि निज अंतरंग कषाय से।
दण्डकनगर को भस्मकर रौरव नरक में जा पड़े।। ४९ ।।
इस ही तरह द्रवलिंगी द्वीपायन मुनी भी भ्रष्ट हो।
दुर्गति गमनकर दुख सहे अर अनंत संसारी हुए।। ५० ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपुरस्सर-द्रव्यलिंगमुनिप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं.।। १३४ ।।

अब, भावलिंग के धारी मुनिराजों का दृष्टान्त देते हैं –

(हरिगीत)

शुद्धबुद्धी भावलिंगी अंगनाओं से घिरे।
होकर भी शिवकुमार मुनि संसारसागर तिर गये।। ५१ ।।
अभविसेन ने केवलि प्ररूपित अंग ग्यारह भी पढ़े।
पर भावलिंग बिना अरे संसारसागर न तिरे।। ५२ ।।

(गाथा)

भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ दव्वलिंगेण।। ४८।।
दंडयणयंरं सयलं डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।
जिणलिंगेण वि बाहू पडिओ सो रउरवे णरए।। ४९।।
अवरो वि दव्वसवणो दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो।
दीवायणो त्ति णामो अणंतसंसारिओ जाओ।। ५०।।
भावसमणो य धीरो जुवईजणबेढियो विसुद्धमई।
णामेण सिवकुमारो परीत्तसंसारिओ जादो।। ५१।।
केवलिजिणपण्णत्तं एयादसअंग सयलसुयणाणं।
पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं।। ५२।।

कहाँ तक बतावें अरे महिमा तुम्हें भावविशद्धि की।
तुषमास पद को घोखते शिवभूति केवलि हो गये।। ५३ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपुरस्सर-भावलिंगमुनिनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। १३५ ।।

अब, भावनग्नता ही नग्नता है – यह बताते हैं –

(हरिगीत)

भाव से हो नग्न तन से नग्नता किस काम की।
भाव एवं द्रव्य से हो नाश कर्मकलंक का।। ५४ ।।
भाव विरहित नग्नता कुछ कार्यकारी है नहीं।
यह जानकर भाओ निरन्तर आतम की भावना।। ५५ ।।

ॐ ह्रीं भावनग्नैव नग्नः - इति निरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि...।। १३६ ।।

अब, भावलिंग का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

देहादि के संग से रहित अर रहित मान कषाय से।
अर आतमारत सदा ही जो भावलिंगी श्रमण वह।। ५६ ।।
निज आत्म का अवलम्ब ले मैं और सबको छोड़ दूँ।
अर छोड़ ममताभाव को निर्ममत्व को धारण करूँ।। ५७ ।।

(गाथा)

तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ।। ५३।।
भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।
कम्मपयडीण णियरं णासइ भावेण दव्वेण।। ५४।।
णग्गत्तणं अकज्जं भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं।
इय णाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पयं धीर।। ५५।।
देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचित्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू।। ५६।।
ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे।। ५७।।

निज ज्ञान में है आतमा दर्शन चरण में आतमा।
और संवर योग प्रत्याख्यान में है आतमा।। ५८ ।।
अरे मेरा एक शाश्वत आतमा दृगज्ञानमय।
अवशेष जो हैं भाव वे संयोगलक्षण जानने।। ५९ ।।

ॐ ह्रीं भावलिंगीमुनिस्वरूपनिरूपक श्री भावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि....।। १३७ ।।

अब, यहाँ आत्मभावना भाने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

चतुर्गति से मुक्त हो यदि शाश्वत सुख चाहते।
तो सदा निर्मलभाव से ध्याओ श्रमण शुद्धातमा।। ६० ।।
जो जीव जीवस्वभाव को सुधभाव से संयुक्त हो।
भावे सदा वह जीव ही पावे अमर निर्वाण को।। ६१ ।।

ॐ ह्रीं आत्मभावनाप्रेरक श्री भावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।। १३८ ।।

अब, जीव के स्वरूप को बताते हैं –

(हरिगीत)

चेतना से सहित ज्ञानस्वभावमय यह आतमा।
कर्मक्षय का हेतु यह है यह कहें परमातमा।। ६२ ।।

(गाथा)

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे।। ५८।।
एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।। ५९।।
भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविशुद्धणिम्मलं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छइ सासयं सुक्खं।। ६०।।
जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो।
सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं।। ६१।।
जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहावो य चेयणासहिओ।
सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो।। ६२।।

जो जीव के सद्भाव को स्वीकारते वे जीव ही।
निर्देह निर्वच और निर्मल सिद्धपद को पावते।। ६३ ।।
चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है।। ६४ ।।
अज्ञान नाशक पंचविध जो ज्ञान उसकी भावना।
भा भाव से हे आत्मन् ! तो स्वर्ग-शिवसुख प्राप्त हो।। ६५ ।।

ॐ ह्रीं जीवस्वरूपनिरूपक श्री भावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।। १३९ ।।

अब, पढ़ना-लिखना भावबिना कुछ नहीं है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

श्रमण श्रावकपने का है मूल कारण भाव ही।
क्योंकि पठन अर श्रवण से भी कुछ नहीं हो भावबिन।। ६६ ।।

ॐ ह्रीं भावरहितपठनादिनिर्रथकत्वप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं ...।। १४० ।।

अब, अंतरंग से नग्न होने की प्रेरणा देते हैं -

(हरिगीत)

द्रव्य से तो नग्न सब नर नारकी तिर्यंच हैं।
पर भावशुद्धि के बिना श्रमणत्व को पाते नहीं।। ६७ ।।

(गाथा)

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ।
ते होंति णिणदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा।। ६३ ।।
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्ग्हणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।। ६४ ।।
भावहि पंचपयारं णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं।
भावणभावियसहिओ दिवसिवसुहभायणो होइ।। ६५ ।।
पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिएण।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं।। ६६ ।।
दव्वेण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया।
परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तणं पत्ता।। ६७ ।।

हों नग्न पर दुख सहें अर संसारसागर में रुलें।
जिन भावना बिन नग्नतन भी बोधि को पाते नहीं।। ६८ ।।

मान मत्सर हास्य ईर्ष्या पापमय परिणाम हों।
तो हे श्रमण तननगन होने से तुझे क्या साध्य है।। ६९ ।।

हे आत्मन् जिनलिंगधर तू भावशुद्धी पूर्वक।
भावशुद्धि के बिना जिनलिंग भी हो निरर्थक।। ७० ।।

सद्धर्म का न वास जह तह दोष का आवास है।
है निरर्थक निष्फल सभी सद्ज्ञान बिन हे नटश्रमण।। ७१ ।।

जिनभावना से रहित रागी संग से संयुक्त जो।
निर्ग्रन्थ हों पर बोधि और समाधि को पाते नहीं।। ७२ ।।

मिथ्यात्व का परित्याग कर हो नग्न पहले भाव से।
आज्ञा यही जिनदेव की फिर नग्न होवे द्रव्य से।। ७३ ।।

ॐ ह्रीं भावनग्नत्वप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १४१ ।।

(गाथा)

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमइ।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं।। ६८।।
अयसाण भायणेय य किं ते णग्गेण पावमलिणेण।
पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण।। ६९।।
पयडहिं जिणवरलिंगं अब्भिंतरभावदोसपरिसुद्धो।
भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियइ।। ७०।।
धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो।
णिफ्फलिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण।। ७१।।
जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा।
ण लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसासणे विमले।। ७२।।
भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए।। ७३।।

अब, शुद्धभाव ही स्वर्ग-मोक्ष का कारण है - यह बताते हैं -

(हरिगीत)

हो भाव से अपवर्ग एवं भाव से ही स्वर्ग हो।
पर मलिनमन अर भाव विरहित श्रमण तो तिर्यंच हो।। ७४ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धभावैव स्वर्गमोक्षस्य कारणनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं .. ।। १४२ ।।

अब, भाव के फल का माहात्म्य कहते हैं -

(हरिगीत)

सुभाव से ही प्राप्त करते बोधि अर चक्रेश पद।
नर अमर विद्याधर नमें जिनको सदा कर जोड़कर।। ७५ ।।

ॐ ह्रीं भावफलमाहात्म्यनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १४३ ।।

अब, भावों के भेद कहते हैं -

(हरिगीत)

शुभ अशुभ एवं शुद्ध इसविधि भाव तीन प्रकार के।
रौद्रार्त तो हैं अशुभ किन्तु शुभ धरममय ध्यान है।। ७६ ।।
निज आत्मा का आत्मा में रमण शुद्धस्वभाव है।
जो श्रेष्ठ है वह आचरो जिनदेव का आदेश यह।। ७७ ।।

ॐ ह्रीं भावभेदनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।। १४४ ।।

(गाथा)

भावो वि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो।
कम्ममलमलिणचित्तो तिरियालयभायणो पावो ।। ७४ ।।
खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला।
चक्कहररायलच्छी लब्भइ बोही सुभावेण ।। ७५ ।।
भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्टरउद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं ।। ७६ ।।
सुद्धं सुद्धसहावं अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।
इदि जिणवरेहिं भणियं जं सेयं तं समायरह ।। ७७ ।।

अब, आगे भाव के माहात्म्य को बताते हैं –

(हरिगीत)

गल गये जिसके मान मिथ्या मोह वह समचित्त ही।
त्रिभुवन में सार ऐसे रत्नत्रय को प्राप्त हो।। ७८ ।।
जो श्रमण विषयों से विरत वे सोलहकारणभावना।
भा तीर्थंकर नामक प्रकृति को बाँधते अतिशीघ्र ही।। ७९ ।।

ॐ ह्रीं षोड़शकारणभावनामाहात्म्यनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं.. ।। १४५ ।।

अब, मन को वश में करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

तेरह क्रिया तप वार विध भा विविध मनवचकाय से।
हे मुनिप्रवर ! मन मत्त गज वश करो अंकुश ज्ञान से।। ८० ।।

ॐ ह्रीं मनस्संयमनप्रेरकश्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।। १४६ ।।

अब, द्रव्यभावरूप जिनलिंग का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

वस्त्र विरहित क्षिति शयन भिक्षा असन संयम सहित।
जिन लिंग निर्मल भाव भावित भावना परिशुद्ध है।। ८१ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यभावरूपजिनलिंगप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १४७।।

(गाथा)

पयलियमाणकसाओ पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो।
पावइ तिहुवणसारं बोही जिणसासणे जीवो।। ७८।।
विसयविरत्तो समणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
त्थियरणामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण।। ७९।।
बारसविहतवयरणं तेरसकिरियाउ भाव तिविहेण।
धरहि मणमत्तदुरियं णाणं कुसएण मुणिपवर।। ८०।।
पंचविहचेलचायं खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू।
भावं भावियपुव्वं जिणलिंग णिम्मलं सुद्धं।। ८१।।

अब, जिनधर्म की महिमा कहते हैं –

(हरिगीत)

ज्यों श्रेष्ठ चंदन वृक्ष में हीरा रतन में श्रेष्ठ है।
त्यों धर्म में भवभाविनाशक एक ही जिनधर्म है।। ८२ ।।

ॐ ह्रीं जिनधर्ममहिमानिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १४८।।

अब, पुण्य और धर्म के अंतर को स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

व्रत सहित पूजा आदि सब जिनधर्म में सत्कर्म हैं।
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम आतमधर्म है।। ८३ ।।

अर पुण्य भी है धर्म ह्न ऐसा जान जो श्रद्धा करें।
वे भोग की प्राप्ति करें पर कर्म क्षय न कर सकें।। ८४ ।।

रागादि विरहित आतमा रत आतमा ही धर्म है।
भव तरण-तारण धर्म यह जिनवर कथन का मर्म है।। ८५ ।।

जो नहीं चाहे आतमा अर पुण्य ही करता रहे।
वह मुक्ति को पाता नहीं संसार में रुलता रहे।। ८६ ।।

(गाथा)

जह रयणाणं पवरं वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं।
तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं भाविभवमहणं।। ८२ ।।
पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो।। ८३ ।।
सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।
पुण्णं भोयणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं।। ८४ ।।
अप्पा अप्पम्मिरओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।
संसारतरणहेदू धम्मो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।। ८५ ।।
अह पुण अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।। ८६ ।।

इसलिए पूरी शक्ति से निज आतमा को जानकर।
श्रद्धा करो उसमें रमो नित मुक्तिपद पा जाओगे।। ८७ ।।

ॐ ह्रीं पुण्य-धर्मयोः अंतरनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १४९।।

अब, दृष्टान्तपूर्वक आत्मा को जानने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

सप्तम नरक में गया तन्दुल मत्स्य हिंसक भाव से।
यह जानकर हे आत्मन् ! नित करो आतमभावना।। ८८ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपुरस्सर-आत्मज्ञानप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १५०।।

अब, भावशुद्धि के लिये उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

आतमा की भावना बिन गिरि-गुफा आवास सब।
अर ज्ञान अध्ययन आदि सब करनी निरर्थक जानिये।। ८९ ।।
इन लोकरंजक बाह्यव्रत से अरे कुछ होगा नहीं।
इसलिए पूर्ण प्रयत्न से मन इन्द्रियों को वश करो।। ९० ।।
मिथ्यात्व अर नोकषायों को तजो शुद्ध स्वभाव से।
देव प्रवचन गुरु की भक्ति करो आदेश यह।। ९१ ।।

(गाथा)

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह ति विहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह परत्तेण।। ८७।।
मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पागं भावह जिणभावणं णिच्चं।। ८८।।
बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
सयलो णाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं।। ८९।।
भंजसु इन्दियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण।
मा जणरंजणकरणं बाहिरवयवेस तं कुणसु।। ९०।।
णवणोकसायवग्गं मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए।
चेइयपवयणगुरुणं करेहि भत्तिं जिणाणाए।। ९१।।

तीर्थंकरों ने कहा गणधरदेव ने गूँथा जिसे।
शुद्धभाव से भावो निरन्तर उस अतुल श्रुतज्ञान को।। ९२ ।।
श्रुतज्ञानजल के पान से ही शान्त हो भवदुखतृषा।
त्रैलोक्यचूड़ामणी शिवपद प्राप्त हो आनन्दमय।। ९३ ।।
जिनवरकथित बाईस परीषह सहो नित समचित्त हो।
बचो संयमघात से हे मुनि ! नित अप्रमत्त हो।। ९४ ।।
जल में रहे चिरकाल पर पत्थर कभी भिदता नहीं।
त्यों परीषह उपसर्ग से साधु कभी भिदता नहीं।। ९५ ।।
भावना द्वादश तथा पच्चीस व्रत की भावना।
भावना बिन मात्र कोरे वेष से क्या लाभ है।। ९६ ।।

ॐ ह्रीं भावशुद्धिप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।१५१।।

अब, भावशुद्धि के लिये उपाय बताते हैं –

(हरिगीत)

है सर्वविरती तथापि तत्त्वार्थ की भा भावना।
गुणथान जीवसमास की भी तू सदा भा भावना।। ९७ ।।

(गाथा)

तित्थयरभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंत्थियं सम्मं।
भावहि अणुदिणु अतुलं विसुद्धभावेण सुयणाणं।। ९२।।
पीऊण णाणसलिलं णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का।
होंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा।। ९३।।
दस दस दो सुपरीसह सहहि मुणी सयलकाल काएण।
सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमोत्तूण।। ९४।।
जह पत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुदएण।
तह साहू वि ण भिज्जइ उवसग्गपरीसहेहिंतो।। ९५।।
भावहि अणुवेक्खाओ अवरेपणवीसभावणा भावि।
भावरहिएण किं पुण बाहिरलिंगेण कायव्वं।। ९६।।
सव्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं।
जीवसमासाइं मुणी चउदसगुणठाणणामाइं।। ९७।।

भयंकर भव-वन विषैं भ्रमता रहा आशक्त हो।
बस इसलिए नवकोटि से ब्रह्मचर्य को धारण करो।। ९८ ।।
भाववाले साधु साधे चतुर्विध आराधना।
पर भाव विरहित भटकते चिरकाल तक संसार में।। ९९ ।।

ॐ ह्रीं भावशुद्धि-उपायनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १५२।।

अब, भावशुद्धि के फल को बताते हैं –

(हरिगीत)

तिर्यंच मनुज कुदेव होकर द्रव्यलिंगी दुःख लहें।
पर भावलिंगी सुखी हों आनन्दमय अपवर्ग में।। १०० ।।

ॐ ह्रीं भावशुद्धिफलनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १५३।।

अब, आगे आहारसंबंधी दोषों का वर्णन करते हैं –

(हरिगीत)

अशुद्धभावों से छियालिस दोष दूषित असन कर।
तिर्यंचगति में दुख अनेकों बार भोगे विवश हो।। १०१ ।।
अतिगृद्धता अर दर्प से रे सचित्त भोजन पान कर।
अति दुःख पाये अनादि से इसका भी जरा विचार कर।। १०२ ।।

(गाथा)

णवविहबंभं पयडहि अब्बंभं दसविहं पमोत्तूण।
मेहुणसण्णासत्तो भमिओ सि भवण्णवे भीमे।। ९८ ।।
भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च।
भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे।। ९९ ।।
पावंति भावसवणा कल्लाणपरंपराइं सोक्खाइं।
दुक्खाइं दव्वसवणा णरतिरियकुदेवजोणीए।। १०० ।।
छायालदोसदूसियमसणं गसिउं असुद्धभावेण।
पत्तो सि महावसणं तिरियगईए अणप्पवसो।। १०१ ।।
सच्चित्तभत्तपाणं गिद्धीं वप्पेणऽधी पभुत्तूण।
पत्तो सि तिव्वदुक्खं अणाइकालेण तं चिंत।। १०२ ।।

अर कंद मूल बीज फूल पत्र आदि सचित्त सब।
सेवन किये मदमत्त होकर भ्रमे भव में आजतक।। १०३ ।।

ॐ ह्रीं आहारसम्बन्धीदोषनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १५४।।

अब, विनयपालन करने का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

विनय पंच प्रकार पालो मन वचन अर काय से।
अविनयी को मुक्ति की प्राप्ति कभी होती नहीं।। १०४ ।।

ॐ ह्रीं पंचप्रकारविनयप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १५५।।

अब, भक्तिरूप वैयावृत्य का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

निजशक्ति केअनुसार प्रतिदिन भक्तिपूर्वक चाव से।
हे महायश ! तुम करो वैयावृत्ति दशविध भाव से।। १०५ ।।

ॐ ह्रीं भक्तिसहितवैयावृत्तिप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १५६।।

अब, गर्हा का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

अरे मन वचन काय से यदि हो गया कुछ दोष तो।
मान माया त्याग कर गुरु के समक्ष प्रगट करो।। १०६ ।।

ॐ ह्रीं गर्हाप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १५७।।

(गाथा)

कंदं मूलं बीयं पुप्फं पत्तादि किंचि सच्चित्तं।
असिऊण माणगव्वं भमिओ सि अणतसंसारे।। १०३।।
विणयं पंचपयारं पालहि मणवयकायजोएण।
अविणयणरा सुविहियं तत्तो मुत्तिं न पावंति।। १०४।।
णियसत्तीए महाजस भत्तीराएण णिच्चकालम्मि।
तं कुण जिणभत्तिपरं विज्जावच्चं दसवियप्पं।। १०५।।
जं किंचि कयं दोसं मणवयकाएहिं असुहभावेण।
तं गरहि गुरुसयासे गारव मायं च मोत्तूण।। १०६।।

अब, क्षमा का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

निष्ठुर कटुक दुर्जन वचन सत्पुरुष सहें स्वभाव से।
सब कर्मनाशन हेतु तुम भी सहो निर्ममभाव से।। १०७ ।।

ॐ ह्रीं क्षमाग्रहणप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १५८।।

अब, क्षमा का फल कहते हैं –

(हरिगीत)

अर क्षमा मंडित मुनि प्रकट ही पाप सब खण्डित करें।
सुरपति उरग–नरनाथ उनके चरण में वंदन करें।। १०८।।
यह जानकर हे क्षमागुणमुनि ! मन–वचन अर काय से।
सबको क्षमा कर बुझा दो क्रोधादि क्षमास्वभाव से।। १०९ ।।

ॐ ह्रीं क्षमाफलनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १५९।।

अब, दीक्षाकालादिक की भावना का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

असार है संसार सब यह जान उत्तम बोधि की।
अविकार मन से भावना भा अरे दीक्षाकाल सम।। ११० ।।

ॐ ह्रीं दीक्षाकालादिकभावनाप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं. ।। १६०।।

(गाथा)

दुज्जणवयणचडक्कं णिट्ठुरकडुयं सहंति सप्पुरिसा।
कम्ममलणासणट्ठं भावेण य णिम्ममा सवणा।। १०७।।
पावं खवइ असेसं खमाए पडिमंडिओ य मुणिपवरो।
खेयरअमरणराणं पसंसणीओ धुवं होइ।। १०८।।
इय णाऊण खमागुण खमेहि तिविहेण सयल जीवाणं।
चिरसंचियकोहसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेह।। १०९।।
दिक्खाकालाईयं भावहि अवियारदंसणविसुद्धो।
उत्तमबोहिणिमित्तं असारसाराणि मुणिऊण।। ११०।।

अब, भावलिंगपूर्वक द्रव्यलिंग ग्रहण करने का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

अंतरंग शुद्धिपूर्वक तू चतुर्विध द्रवलिंग धर।
क्योंकि भाव बिना द्रवलिंग कार्यकारी है नहीं।। १११ ।।

ॐ ह्रीं भावलिंगपूर्वकद्रव्यलिंगग्रहणप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १६१।।

अब, संसार परिभ्रमण का कारण बताते हैं –

(हरिगीत)

आहार भय मैथुन परीग्रह चार संज्ञा धारकर।
भ्रमा भववन में अनादिकाल से हो अन्य वश।। ११२ ।।

ॐ ह्रीं संसारपरिभ्रमणकारणनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १६२।।

अब, शुद्धभावपूर्वक उत्तरगुण को पालन करने का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

भावशुद्धिपूर्वक पूजादि लाभ न चाहकर।
निज शक्ति से धारण करो आतपन आदि योग को।। ११३ ।।

ॐ ह्रीं भावशुद्धपूर्वकउत्तरगुणग्राहक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १६३।।

अब, तत्त्व की भावना भाने का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

प्रथम द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ पंचम तत्त्व की।
आद्यन्तरहित त्रिवर्ग हर निज आत्मा की भावना।। ११४ ।।

(गाथा)

सेवहि चउविहलिंगं अब्भंतरलिंगसुद्धिमावण्णो।
बाहिरलिंगमकज्जं होइ फुडं भावरहियाणं।। १११।।
आहारभयपरिग्गहमेहुणसण्णाहि मोहिओ सि तुमं।
भमिओ संसारवणे अणाइकालं अणप्पवसो।। ११२।।
बाहिरसयणत्तावणतरुमूलाईणि उत्तरगुणाणि।
पालहि भावविशुद्धो पूयालाहं ण ईहंतो।। ११३।।
भावहि पढमं तच्चं बिदियं तदियं चउत्थ पंचमयं।
तियरणसुद्धो अप्पं अणाइणिहणं तिवग्गहरं।। ११४।।

भावों निरन्तर बिना इसके चिन्तवन अर ध्यान के।
जरा-मरण से रहित सुखमय मुक्ति की प्राप्ति नहीं।। ११५ ।।

परिणाम से ही पाप सब अर पुण्य सब परिणाम से।
यह जैनशासन में कहा बंधमोक्ष भी परिणाम से।। ११६ ।।

जिनवच परान्मुख जीव यह मिथ्यात्व और कषाय से।
ही बांधते हैं करम अशुभ असंयम से योग से।। ११७ ।।

भावशुद्धीवंत अर जिन-वचन अराधक जीव ही।
हैं बाँधते शुभकर्म यह संक्षेप में बंधन-कथा।। ११८ ।।

ॐ ह्रीं तत्त्वार्थभावनाप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १६४।।

अब, कर्मों के अभाव करने की भावना भाते हैं -

(हरिगीत)

अष्टकर्मों से बंधा हूँ अब इन्हें मैं दग्धकर।
ज्ञानादिगुण की चेतना निज में अनंत प्रकट करूँ।। ११९ ।।

ॐ ह्रीं कर्माभावभावनाप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १६५।।

(गाथा)

जाव ण भावइ तच्चं जाव ण चिंतेइ चिंतणीयाइं।
ताव ण पावइ जीवो जरमरणविवज्जियं ठाणं।। ११५ ।।
पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा।
परिणामादो बंधो मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो।। ११६ ।।
मिच्छत्त तह कसायासंजमजोगेहिं असुहलेसेहिं।
बंधइ असुहं कम्मं जिणवयणपरम्मुहो जीवो।। ११७ ।।
तव्विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो।
दुविहपयारं बंधइ संखेपेणेव वज्जरियं।। ११८ ।।
णाणावरणादीहिं य अट्ठहिं कम्मेहिं वेढिओ य अहं।
डहिऊण इण्हिं पयडमि अणंतणाणाइगुणचित्तां।। ११९ ।।

अब, शीलगुण तथा उत्तरगुण को ग्रहण करने का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

शील अठदशसहस उत्तर गुण कहे चौरासी लख।
भा भावना इन सभी की इससे अधिक क्या कहें हम।। १२० ।।

ॐ ह्रीं शील-उत्तरगुणभावनाप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १६६।।

अब, ध्यान करने का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

रौद्रार्त वश चिरकाल से दुःख सहे अगणित आजतक।
अब तज इन्हें ध्या धरमसुखमय शुक्ल भव के अन्ततक।। १२१ ।।
इन्द्रिय-सुखाकुल द्रव्यलिंगी कर्मतरु नहिं काटते।
पर भावलिंगी भवतरु को ध्यान करवत काटते।। १२२ ।।
ज्यों गर्भगृह में दीप जलता पवन से निर्बाध हो।
त्यों जले निज में ध्यान दीपक राग से निर्बाध हो।। १२३ ।।
शुद्धात्म एवं पंचगुरु का ध्यान धर इस लोक में।
वे परम मंगल परम उत्तम और वे ही हैं शरण।। १२४ ।।

ॐ ह्रीं रौद्रार्तध्याननिषिध्यधर्म-शुक्लध्यानप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं ..।। १६७।।

(गाथा)

सीलसहस्सट्ठारस चउरासीगुणगणाण लक्खाइं।
भावहि अणुदिणु णिहिलं असप्पलावेण किं बहुणा।। १२०।।
झायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउद्दं च झाण मुत्तूण।
रुद्दट्ट झाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं।। १२१।।
जे के वि दव्वसवणा इंदियसुहआउला ण छिंदंति।
छिंदंति भावसवणा झाणकुढारेहिं भवरुक्खं।। १२२।।
जह दीवो गब्भहरे मारुयबाहाविवज्जिओ जलइ।
तह रायाणिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ।। १२३।।
झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए।
णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे।। १२४।।

अब, ज्ञान की महिमा बताते हैं –

(हरिगीत)

आनन्दमय मृतु जरा व्याधि वेदना से मुक्त जो।
वह ज्ञानमय शीतल विमल जल पियो भविजन भाव से।। १२५ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानमहिमाप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १६८।।

अब, पुनः भावलिंग को ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

ज्यों बीज के जल जाने पर अंकुर नहीं उत्पन्न हो।
कर्मबीज के जल जाने पर न भवांकुर उत्पन्न हो।। १२६ ।।
भावलिंगी सुखी होते द्रव्यलिंगी दुःख लहें।
गुण–दोष को पहिचानकर सब भाव से मुनिपद गहें।। १२७ ।।
भाव से जो हैं श्रमण जिनवर कहें संक्षेप में।
सब अभ्युदय के साथ ही वे तीर्थंकर गणधर बनें।। १२८।।
जो ज्ञान–दर्शन–चरण से हैं शुद्ध माया रहित हैं।
रे धन्य हैं वे भावलिंगी संत उनको नमन है।। १२९ ।।

ॐ ह्रीं भावलिंगग्रहणप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १६९।।

(गाथा)

णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण।
वाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति।। १२५।।
जह बीयम्मि य दड्ढे ण वि रोहइ अंकुरो य महिवीढे।
तह कम्मबीयदड्ढे भवंकुरो भावसवणाणं।। १२६।।
भावसवणो वि पावइ सुक्खाइं दुहाइं दव्वसवणो य।
इय णाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होह।। १२७।।
तित्थयरगणहराइं अब्भुदयपरंपराइं सोक्खाइं।
पावंति भावसहिया संखेवि जिणेहिं वज्जरियं।। १२८।।
ते धण्णा ताण णमो दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं।
भावसहियाण णिच्चं तिविहेण पणट्ठमायाणं।। १२९।।

अब, पुनः भावलिंग का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

जो धीर हैं गम्भीर हैं जिन भावना से सहित हैं।
वे ऋद्धियों में मुग्ध न हों अमर विद्याधरों की।। १३० ।।
इन ऋद्धियों से इसतरह निरपेक्ष हों जो मुनि धवल।
क्यों अरे चाहें वे मुनी निस्सार नरसुर सुखों को।। १३१ ।।

ॐ ह्रीं भावलिंगस्वरूपनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १७०।।

अब, आचार्य अपना हित करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

करले भला तबतलक जबतक वृद्धपन आवे नहीं।
अरे देह में न रोग हो बल इन्द्रियों का ना घटे।। १३२ ।।

ॐ ह्रीं आत्महितप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १७१।।

अब, अहिंसा धर्म का उपदेश देते हैं –

(हरिगीत)

छह काय की रक्षा करो षट् अनायतन को त्यागकर।
और मन-वच-काय से तू ध्या सदा निज आतमा।। १३३ ।।

ॐ ह्रीं अहिंसाधर्मप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १७२।।

(गाथा)

इड्ढिमतुलं विउव्विय किण्णरकिंपुरिसअमरखयरेहिं।
तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो।। १३०।।
किं पुण गच्छइ मोहं णरसुरसुक्खाण अप्पसाराणं।
जाणंतो पस्संतो चिंतंतो मोक्ख मुणिधवलो।। १३१।।
उत्थरह जा ण जरओ रोयण्णी जा ण डहइ देहउडिं।
इन्दियबलं ण वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं।। १३२।।
छज्जीव छडायदणं णिच्चं मणवयणकायजोएहिं।
कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुव्वं महासत्तं।। १३३।।

अब, जीव के संसारपरिभ्रमण के दुःखों को बताते हैं –

(हरिगीत)

भवभ्रमण करते आजतक मन–वचन एवं काय से।
दश प्राणों का भोजन किया निज पेट भरने के लिये।। १३४ ।।

इन प्राणियों के घात से योनी चौरासी लाख में।
बस जन्मते मरते हुये, दुख सहे तूने आजतक।। १३५ ।।

ॐ ह्रीं संसारपरिभ्रमणदुःखनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १७३।।

अब, अभयदान करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

यदि भवभ्रमण से ऊबकर तू चाहता कल्याण है।
तो मन वचन अर काय से सब प्राणियों को अभय दे।। १३६ ।।

ॐ ह्रीं अभयदानप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १७४।।

अब, मिथ्यात्व के भेद और उसका स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

अक्रियावादी चुरासी बत्तीस विनयावादि हैं ।
सौ और अस्सी क्रियावादी सरसठ अरे अज्ञानि हैं।। १३७ ।।

(गाथा)

दसविहपाणाहारो अणंतभवसायरे भमंतेण।
भोयसुहकारणट्ठं कदो य तिविहेण सयलजीवाणं।। १३४।।
पाणिवहेहि महाजस चउरासीलक्खजोणिमज्झम्मि।
उप्पजंत मरंतो पत्तो सि णिरंतरं दुक्खं।। १३५।।
जीवाणमभयदाणं देहि मुणी पाणिभूयसत्ताणं।
कल्लाणसुहणिमित्तं परंपरा तिविहसुद्धीए।। १३६।।
असियसय किरियवाई अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी।
सत्तट्ठी अण्णाणी वेणईया होंति बत्तीसा।। १३७।।

गुड़–दूध पीकर सर्प ज्यों विषरहित होता है नहीं ।
अभव्य त्यों जिनधर्म सुन अपना स्वभाव तजे नहीं ।। १३८ ।।

मिथ्यात्व से आछन्नबुद्धि अभव्य दुर्मति दोष से ।
जिनवरकथित जिनधर्म की श्रद्धा कभी करता नहीं ।। १३९ ।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्वभेदनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १७५।।

अब, मिथ्यात्व संसार का कारण है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

तप तपें कुत्सित और कुत्सित साधु की भक्ति करें ।
कुत्सित गति को प्राप्त हों रे मूढ़ कुत्सितधर्मरत ।। १४० ।।
कुनय अर कुशास्त्र मोहित जीव मिथ्यावास में ।
घूमा अनादिकाल से हे धीर ! सोच विचार कर ।। १४१ ।।

ॐ ह्रीं संसारकारणमिथ्यात्वनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १७६।।

अब, जिनमार्ग को ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

तीन शत त्रिषष्ठि पाखण्डी मतों को छोड़कर ।
जिनमार्ग में मन लगा इससे अधिक मुनिवर क्या कहें ।। १४२ ।।

ॐ ह्रीं जिनमार्गप्रेरक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।। १७७।।

(गाथा)

णमुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठु वि आयण्णिऊण जिणधम्मं ।
गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ।। १३८ ।।
मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं ।
धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्वजीवो ण रोचेदि ।। १३९ ।।
कुच्छियधम्मम्मिरओ कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो ।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होइ ।। १४० ।।
इय मिच्छत्तावासे कुणयकुसत्थेहिं मोहिओ जीवो ।
भमिओ अणाइकालं संसारे धीर चिंतेहि ।। १४१ ।।
पासंडी तिण्णि सया तिसट्ठि भेया उमग्ग मुत्तूण ।
रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा ।। १४२ ।।

अब, सम्यक्त्व के माहात्म्य को बताते हैं –

(हरिगीत)

अरे समकित रहित साधु सचल मुरदा जानियें।
अपूज्य है ज्यों लोक में शव त्योंहि चलशव मानिये।। १४३ ।।

तारागणों में चन्द्र ज्यों अर मृगों में मृगराज ज्यों।
श्रमण–श्रावक धर्म में त्यों एक समकित जानिये।। १४४ ।।

नागेन्द्र के शुभ सहसफण में शोभता माणिक्य ज्यों।
अरे समकित शोभता त्यों मोक्ष के मारग विषैं।। १४५ ।।

चन्द्र तारागण सहित ही लसे नभ में जिसतरह ।
व्रत तप तथा दर्शन सहित जिनलिंग शोभे उसतरह।। १४६ ।।

इमि जानकर गुण–दोष मुक्ति महल की सीढ़ी प्रथम ।
गुण रतन में सार समकित रतन को धारण करो ।। १४७।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वमाहात्म्यनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. ।। १७८।।

(गाथा)

जीवविमुक्को सबओ दंसणमुक्को य होइ चलसबओ।
सबओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसबओ।। १४३ ।।
जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाए सव्वाणं।
अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं।। १४४ ।।
जह फणिराओ सोहइ फणामणिमाणिक्ककिरणविप्फुरिओ।
तह विमलदंसणधरो जिणभत्ती पवयणे जीवो।। १४५ ।।
जह तारायणसहियं ससहरबिंबं खमंडले विमले।
भाविय तववयविमलं जिणलिंगं दंसणविसुद्धं।। १४६ ।।
इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स।। १४७ ।।

अब, जीव पदार्थ का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

देहमित अर कर्त्ता–भोक्ता जीव दर्शन–ज्ञानमय ।
अनादि अनिधन अमूर्तिक कहा जिनवर देव ने।। १४८ ।।

ॐ ह्रीं जीवपदार्थस्वरूपनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।। १७९।।

अब, घातिकर्मपूर्वक अनंतचतुष्टय के धारी अरहंत परमेष्ठी का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

जिन भावना से सहित भवि दर्शनावरण–ज्ञानावरण ।
अर मोहनी अन्तराय का जड़ मूल से मर्दन करें।। १४९ ।।

हो घातियों का नाश दर्शन–ज्ञान–सुख–बल अनंते ।
हो प्रगट आतम माहिं लोकालोक आलोकित करें।। १५० ।।

यह आत्मा परमात्मा शिव विष्णु ब्रह्मा बुद्ध है।
ज्ञानि है परमेष्ठि है सर्वज्ञ कर्म विमुक्त है।। १५१ ।।

(गाथा)

कत्ता भोइ अमुत्तो सरीरमित्तो अणाइणिहणो य ।
दंसणणाणुवओगो णिद्दिट्ठो जिणवरिंदेहिं ।। १४८ ।।
दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं ।
णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो ।। १४९ ।।
बलसोक्खणाणदंसण चत्तारि वि पयडा गुणा होंति ।
णट्ठे घाइचउक्के लोयालोयं पयासेदि ।। १५० ।।
णाणी सिव परमेट्ठी सव्वण्हू विण्हू चउमुहो बुद्धो ।
अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुडं ।। १५१ ।।

घन–घाति कर्म विमुक्त अर त्रिभुवनसदन संदीप जो।
अर दोष अष्टादश रहित वे देव उत्तम बोधि दें ।। १५२ ।।

जिनवर चरण में नमें जो नर परम भक्तिभाव से ।
वर भाव से वे उखाड़े भवबेलि को जड़मूल से ।। १५३ ।।

ॐ ह्रीं अनंतचतुष्टययुक्तअरहंतस्वरूपनिरूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १८०।।

अब, सम्यग्दृष्टि मुनिराज के स्वरूप का वर्णन करते हुये उनकी महिमा बताते हैं –

(हरिगीत)

जल में रहें पर कमल पत्ते लिप्त होते हैं नहीं ।
सत्पुरुष विषय–कषाय में त्यों लिप्त होते हैं नहीं ।। १५४ ।।

सब शील संयम गुण सहित जो उन्हें हम मुनिवर कहें ।
बहु दोष के आवास जो हैं अरे श्रावक सम न वे ।। १५५ ।।

जीते जिन्होंने प्रबल दुर्द्धर अर अजेय कषाय भट ।
रे क्षमादम तलवार से वे धीर हैं वे वीर हैं ।। १५६ ।।

(गाथा)

इय घाइकम्ममुक्को अट्ठारहदोसवज्जिओ सयलो।
तिहुवणभवणपदीवो देउ ममं उत्तमं बोहिं।। १५२।।
जिणवरचरणंबुरुहंणमंति जे परमभत्तिराएण।
ते जम्मवेल्लिमूलं खणंति वरभावसत्थेण।। १५३।।
जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो।। १५४।।
ते च्चिय भणामि हं जे सयलकलासीलसंजमगुणेहिं।
बहुदोसाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो।। १५५।।
ते धीरवीरपुरिसा खमदमखग्गेस विप्फुरंतेण।
दुज्जयपबलबलुद्धरकसायभड णिज्जिया जेहिं।। १५६।।

विषय सागर में पड़े भवि ज्ञान-दर्शन करों से ।
जिनने उतारे पार जग में धन्य हैं भगवंत वे ।। १५७।।

पुष्पित विषयमय पुष्पों से अर मोहवृक्षारूढ़ जो ।
अशेष माया बेलि को मुनि ज्ञानकरवत काटते ।। १५८ ।।

मोहमद गौरवरहित करुणासहित मुनिराज जो ।
अरे पापस्तंभ को चारित खड़ग से काटते ।। १५९ ।।

सद्गुणों की मणिमाल जिनमत गगन में मुनि निशाकर ।
तारावली परिवेष्ठित हैं शोभते पूर्णेन्दु सम ।। १६० ।।

चक्रधर बलराम केशव इन्द्र जिनवर गणपति ।
अर ऋद्धियों को पा चुके जिनके हैं भाव विशुद्धवर ।। १६१ ।।

जो अमर अनुपम अतुल शिव अर परम उत्तम विमल है।
पा चुके ऐसा मुक्ति सुख जिनभावना भा नेक नर ।। १६२ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दृष्टिमुनिमहिमाप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं.. ।। १८१।।

(गाथा)

धण्णा ते भगवंता दंसणणाणग्गपवरहत्थेहिं।
विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं।। १५७।।
मायावेल्लि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा।
विसयविसपुप्फफुल्लिय लुणंति मुणि णाणसत्थेहिं।। १५८।।
मोहमयगारवेहिं य मुक्का जे करुणभावसंजुत्ता।
ते सव्वदुरियखंभं हणंति चारित्तखग्गेण।। १५९।।
गुणगणमणिमालाए जिणमयगयणे णिसायरमुणिंदो।
तारावलिपरियरिओ पुण्णिमइं दुव्व पवणपहे।। १६०।।
चक्कहररामकेसवसुरवरजिणगणहराइसोक्खाइं।
चारणमुणिरिद्धीओ विसुद्धभावा णरा पत्ता।। १६१।।
सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमं परमविमलमतुलं।
पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया जीवा।। १६२।।

अब, यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य सिद्ध परमेष्ठी की स्तुति करते हैं –

(हरिगीत)

जो निरंजन हैं नित्य हैं त्रैलोक्य महिमावंत हैं ।
वे सिद्ध दर्शन–ज्ञान अर चारित्र शुद्धि दें हमें।। १६३ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठीस्तुतिप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।। १८२।।

अब, आगे भाव के कथन का संकोच करते हैं –

(हरिगीत)

इससे अधिक क्या कहें हम धर्मार्थकाम रु मोक्ष में ।
या अन्य सब ही कार्य में है भाव की ही मुख्यता।। १६४ ।।

ॐ ह्रीं भावप्राधान्यप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।। १८३।।

अब, भावपाहुड़ को पूर्ण करते हुये उसके पढ़ने का फल बताते हैं –

(हरिगीत)

इस तरह यह सर्वज्ञ भासित भावपाहुड जानिये ।
भाव से जो पढ़ें अविचल थान को वे पायेंगे।। १६५ ।।

ॐ ह्रीं भावपाहुड़फलप्ररूपक श्रीभावपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।। १८४।।

(गाथा)

ते मे तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा णिरंजणा णिच्चा।
दिंतु वरभावसुद्धिं दंसण णाणे चरित्ते य ।। १६३ ।।
किं जंपिएण बहुणा अत्थो धम्मो य काममोक्खो च।
अण्णे वि य वावारा भावम्मि परिट्ठिया सव्वे ।। १६४ ।।
इय भावपाहुमिणं सव्वंबुद्धेहि देसियं सम्मं।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं ।। १६५ ।।

जयमाला

(दोहा)

पूजन अर अर्घ्यावली पूरण हुई पवित्र।
अब जयमाला में सुनो यत्र-तत्र-सर्वत्र।। १ ।।
शुद्धभाव ही सार है शुद्धभाव ही धर्म।
इस पाहुड़ का सार यह यही धर्म का मर्म।। २ ।।

(रोला)

अरे भावपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
शुद्धभाव से भावों की महिमा समझाई।।
शुद्धभाव के बिना धर्म में सभी शून्य है।
शुद्धभाव से ही होती है मुक्ति भाई।। ३ ।।

शुद्धभाव के बिना परिग्रह सभी छोड़ दें।
कोटि-कोटि वर्षों तक पूरी करें तपस्या।।
किन्तु मार्ग ना देय दिखाई दूर-दूर तक।
और भटकते रहें भयंकर इस भव वन में।। ४ ।।

चारों गति चौरासि योनि में भव-भव भटकें।
किन्तु भाव बिन कहीं मिलें ना सम्यग्दर्शन।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान बिना चारित्र ना सम्यक्।
सम्यक् रत्नत्रय के बिन ना भावलिंग हो।। ५ ।।

भावलिंग बिन द्रव्यलिंग ना किसी काम का।
भावलिंग से द्रव्यलिंग भी शोभित होता।।
जब दोनों का हो सुमेल तब कार्य सिद्ध हो।
अरे भावपाहुड़ में केवल यही कहा है।। ६ ।।

अरे भावपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
विविध उद्धरण देकर केवल यह समझाया।।
भव्य भावना भाई सबको भावलिंग हो।
होवें भव से पार सभी सन्मार्ग बताया।। ७ ।।
भावलिंग के साथ नियम से द्रव्यलिंग हो।
नग्न दिगम्बर दशा नियम से होती भाई।।
बाहर से तो द्रव्यलिंग ही दिखे सभी को।
नग्न दिगम्बर दशा सभी के हृदय समाई।। ८ ।।
नग्न दिगम्बर दशा सभी के हृदय समाई।
यह सौभाग्य हमारा है हम धन्य हो गये।।
मान देख जिनमुद्रा का हम पुलकित होकर।
धन्यवाद देते हैं जग को सच्चे मन से।। ९ ।।
रहे सुरक्षित जग में यह सौभाग्य हमारा।
द्रव्यलिंग के साथ भावलिंगी हों हम सब।।
और शीघ्र ही सिद्धशिला का आरोहण कर।
रे अनंत सुख भोगे हम सब नन्त काल तक।। १० ।।
अरे 'अकेला द्रव्यलिंग ना शत्रु को भी।
होवे' – ऐसा कहते हैं श्रीकुन्दकुन्द मुनि।।
'द्रव्यलिंग के साथ अरे यह भावलिंग भी।
होवे सबको सदा' – हमारी यही भावना।। ११ ।।
निश्चय से शुद्धोपयोग अर शुद्ध परिणति।
है संवर निर्जरा और मुक्ति का कारण।।
यह है सच्चा भावलिंग रे कहें जिनेश्वर।
सच्चे मन से एकमात्र इसको अपनाओ।। १२ ।।

नग्न दिगम्बर दशा और शुभभाव परिणमन।
जैसा पाया जाता है सच्चे मुनिवर के।।
वह ही है बस द्रव्यलिंग जिनवर कहते हैं।
भावलिंग के साथ रहे तो हेय नहीं है।। १३ ।।
अरे भावपाहुड़ सब जग को यही बताता।
भावों को पहिचानों जानों निज आतम को।।
निज आतम में अपनापन कर जमना-रमना।
नग्न दिगम्बर होकर सच्चे मुनिवर बनना।। १४ ।।
नग्न दिगम्बर होकर सच्चे मुनिवर बनना।
यही एक है सार और सब कोरी बातें।।
अरे अकेला द्रव्यलिंग तो केवल बोझा।
उसको ढोते रहने में कुछ सार नहीं है।। १५ ।।
उसको ढोते रहने में कुछ सार नहीं है।
उससे होता भवसागर से पार नहीं है।।
भवसागर हो पार आत्म के आराधन से।
सम्यक् रत्नत्रय पालन से अर साधन से।। १६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीभावपाहुड़परमागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

अरे जगत के सामने निर्ग्रन्थों का पंथ।
भावलिंग की थापना करने वाला ग्रंथ।। १७ ।।
इसप्रकार पूरा हुआ पूजन और विधान।
सभी शान्त हों जगत में सब हों सम्यकवान।। १८ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

७

मोक्षपाहुड़ पूजन

स्थापना

(हरिगीत)

मुक्त होना राग से इस आतमा का मोक्ष है।
वीतरागी भाव की परिपूर्णता ही मोक्ष है।।
ज्ञान-दर्शन-वीर्य-सुख की पूर्णता ही मोक्ष है।
अतीन्द्रिय आनंद की सम्पूर्णता ही मोक्ष है।। १ ।।

(दोहा)

अष्टकर्म का नाश कर कर पुरुषार्थ अपार।
भव्यजीव जो हो गये भवसागर से पार।। २ ।।

उनने पाया नंत सुख जिसका आर न पार।
अभी मुक्त हैं जीव जो उन्हें नमन शतबार।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागम ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागम !! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागम !!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(हरिगीत)

जल

अरे हिम गिरि गुफा जल सम शान्त शीतल नीर ये।
मैं मुक्त होना चाहता संतप्त भव की पीर से।।
मिथ्यात्व मिथ्याचरण से ही मुक्त होना मोक्ष है।
अर अतीन्द्रिय आनन्दमय सर्वज्ञ होना मोक्ष है।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागमाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन

चन्दन समर्पण कर रहा अत्यन्त निर्मलभाव से।
मैं मुक्त होना चाहता मिथ्या विकारी भाव से।।
मिथ्यात्व मिथ्याचरण से ही मुक्त होना मोक्ष है।
अर अतीन्द्रिय आनन्दमय सर्वज्ञ होना मोक्ष है।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागमाय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

अक्षत समर्पण कर रहा हूँ धवल अक्षतभाव से।
रे मुझे अक्षत आतमा की प्राप्ति हो समभाव से।।
मिथ्यात्व मिथ्याचरण से ही मुक्त होना मोक्ष है।
अर अतीन्द्रिय आनन्दमय सर्वज्ञ होना मोक्ष है।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

सुमन से मैं सुमन अर्पण कर रहा हूँ चाव से।
मुझे सुखमय आतमा की प्राप्ति हो समभाव से।।
मिथ्यात्व मिथ्याचरण से ही मुक्त होना मोक्ष है।
अर अतीन्द्रिय आनन्दमय सर्वज्ञ होना मोक्ष है।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागमाय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नेवैद्य

क्षुधा आदि अष्टदश जो दोष उनके शमन को।
क्षुधानाशक मिष्ट मैं नैवेद्य को अर्पण करूँ।।
मिथ्यात्व मिथ्याचरण से ही मुक्त होना मोक्ष है।
अर अतीन्द्रिय आनन्दमय सर्वज्ञ होना मोक्ष है।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागमाय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

दीपित करे दीपक स्व-पर को अरे सीमित लोक में।
पर आतमा जाने स्व-पर को अरे तीनों लोक में।।
मिथ्यात्व मिथ्याचरण से ही मुक्त होना मोक्ष है।
अर अतीन्द्रिय आनन्दमय सर्वज्ञ होना मोक्ष है।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागमाय मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

अरे धूमिल धूप की रे धूम है इस लोक में।
और केवल शान्ति है जिनधर्म के आलोक में।।
मिथ्यात्व मिथ्याचरण से ही मुक्त होना मोक्ष है।
अर अतीन्द्रिय आनन्दमय सर्वज्ञ होना मोक्ष है।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

संसार फलता-फूलता है पुण्य के परिणाम से।
मुक्ति का फल मिले केवल एक आतमराम से।।
मिथ्यात्व मिथ्याचरण से ही मुक्त होना मोक्ष है।
अर अतीन्द्रिय आनन्दमय सर्वज्ञ होना मोक्ष है।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

यह अर्घ्य अर्पण करूँ ध्याऊँ एक अपना आतमा।
निज आतमा के ध्यान से बन जाऊँगा परमातमा।।
मिथ्यात्व मिथ्याचरण से ही मुक्त होना मोक्ष है।
अर अतीन्द्रिय आनन्दमय सर्वज्ञ होना मोक्ष है।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

।। मोक्षपाहुड़ ।।

(दोहा)

अष्ट कर्म को नाश करि, शुद्ध अष्ट गुण पाय।
भये सिद्ध निज ध्यानतैं, नमूं मोक्षसुखदाय।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सर्वप्रथम द्रव्य-भाव-नोकर्मरहित परमात्मा को नमस्कार कर ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं - (हरिगीत)

परद्रव्य को परित्याग पाया ज्ञानमय निज आतमा ।
शत बार उनको हो नमन निष्कर्म जो परमातमा ।। १ ।।
परमपदथित शुध अपरिमित ज्ञान-दर्शनमय प्रभु ।
को नमन कर हे योगिजन ! परमात्म का वर्णन करुँ ।। २ ।।

ॐ ह्रीं परमात्मनमनपूर्वक ग्रन्थप्रतिज्ञावाक्यनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १८५।।

अब, परमात्मा का ध्यान करने का फल बताते हैं -

(हरिगीत)

योगस्थ योगीजन अनवरत अरे ! जिसको जान कर।
अनंत अव्याबाध अनुपम मोक्ष की प्राप्ति करें ।। ३ ।।

ॐ ह्रीं परमात्मध्यानफलनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि...।। १८६ ।।

(गाथा)

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण।
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स।। १ ।।
णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं।
वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं।। २ ।।
जं जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण अणवरयं।
अव्वाबाहमणंतं अणोवमं लहइ णिव्वाणं।। ३ ।।

अब, आत्मा के तीन भेद बताकर, उसका स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

त्रिविध आतमराम में बहिरातमापन त्यागकर ।
अन्तरात्म के आधार से परमात्मा का ध्यान धर ।। ४ ।।
ये इन्द्रियाँ बहिरात्मा अनुभूति अन्तर आतमा ।
जो कर्ममल से रहित हैं वे देव हैं परमातमा ।। ५ ।।
है परमजिन परमेष्ठी है शिवंकर जिन शास्वता ।
केवल अनिन्द्रिय सिद्ध है कल–मलरहित शुद्धातमा ।। ६ ।।
जिनदेव का उपदेश यह बहिरातमापन त्यागकर ।
अरे ! अन्तर आतमा परमात्मा का ध्यान धर ।। ७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मभेदस्वरूपनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति।। १८७ ।।

अब बहिरात्मा की प्रवृत्ति को बताते हैं –

(हरिगीत)

निजरूप से च्युत बाह्य में स्फुरितबुद्धि जीव यह ।
देहादि में अपनत्व कर बहिरात्मपन धारण करे ।। ८ ।।

(गाथा)

तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु देहीणं ।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतोवाएण चइवि बहिरप्पा ।। ४ ।।
अक्खाणि बाहिरप्पा अंतरअप्पा तु अप्पसंकप्पो ।
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णए देवो ।। ५ ।।
मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा ।
परमेट्ठी परमजिणो सिवकरो सासओ सिद्धो ।। ६ ।।
आरुहवि अन्तरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण ।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ।। ७ ।।
बहिरत्थे फुरियमाणो इंदियदारेण णियसरूवचुओ ।
णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ ।। ८ ।।

निज देहसम परदेह को भी जीव जानें मूढ़जन ।
उन्हें चेतन जान सेवें यद्यपि वे अचेतन ।। ९ ।।

निजदेह को निज-आतमा परदेह को पर-आतमा ।
ही जानकर ये मूढ़ सुत-दारादि में मोहित रहें ।। १० ।।

कुज्ञान में रत और मिथ्याभाव से भावित श्रमण ।
मद-मोह से आच्छन्न भव-भव देह को ही चाहते ।। ११ ।।

ॐ ह्रीं बहिरात्मप्रवृत्तिनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १८८ ।।

अब, देह से विरक्त होने की प्रेरणा देते हैं -

(हरिगीत)

जो देह से निरपेक्ष निर्मम निरारंभी योगिजन ।
निर्द्वन्द रत निजभाव में वे ही श्रमण मुक्ति वरें ।। १२ ।।

ॐ ह्रीं देहविरक्तिप्रेरक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १८९ ।।

(गाथा)

णियदेहसरिच्छं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण।
अच्चेयणं पि गहियं झाइज्जइ परमभावेण।। ९ ।।
सपरज्झवसाएणं देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं।
सुयदाराईविसए मणुयाणं वड्ढए मोहो।। १० ।।
मिच्छाणाणेसु रओ मिच्छाभावेण भाविओ संतो।
मोहोदएण पुणरवि अंगं सं मण्णए मणुओ ।। ११ ।।
जो देहे णिरवेक्खो णिद्वंदो णिम्ममो णिरारंभो।
आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं।। १२ ।।

अब, बंध और मोक्ष के कारण का संक्षेप करते हैं –

(हरिगीत)

परद्रव्य में रत बंधें और विरक्त शिवरमणी वरें ।
जिनदेव का उपदेश बंध–अबंध का संक्षेप में ।। १३ ।।

नियम से निज द्रव्य में रत श्रमण सम्यकवंत हैं ।
सम्यक्त्व–परिणत श्रमण ही क्षय करें करमानन्त हैं ।। १४ ।।

किन्तु जो परद्रव्य रत वे श्रमण मिथ्यादृष्टि हैं ।
मिथ्यात्व परिणत वे श्रमण दुष्टाष्ट कर्मों से बंधें ।। १५ ।।

ॐ ह्रीं बंधमोक्षसंक्षिप्तकारणप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १९० ।।

अब परद्रव्य ही से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य ही से सुगति होती है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

परद्रव्य से हो दुर्गति निजद्रव्य से होती सुगति ।
यह जानकर रति करो निज में अर करो पर से विरति ।। १६ ।।

ॐ ह्रीं स्वद्रव्येणसुगतिपरद्रव्येणदुर्गतिनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। १९१ ।।

(गाथा)

परदव्वरओ बज्झदि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।
ऐसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स।। १३ ।।
सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं।। १४ ।।
जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू।
मिच्छत्तपरिणदो पुण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं।। १५ ।।
परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई होइ।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरइ इयरम्मि।। १६ ।।

अब परद्रव्य और स्वद्रव्य का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

जो आतमा से भिन्न चित्ताचित्त एवं मिश्र हैं ।
उन सर्वद्रव्यों को अरे ! परद्रव्य जिनवर ने कहा ।। १७ ।।

दुष्टाष्ट कर्मों से रहित जो ज्ञानविग्रह शुद्ध है ।
वह नित्य अनुपम आतमा स्वद्रव्य जिनवर ने कहा ।। १८ ।।

ॐ ह्रीं स्व-परद्रव्यस्वरूपप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं....।। १९२ ।।

अब, स्वद्रव्य के ध्यान करने का फल बताते हैं –

(हरिगीत)

पर द्रव्य से हो पराङ्मुख निज द्रव्य को जो ध्यावते ।
जिनमार्ग में संलग्न वे निर्वाणपद को प्राप्त हों ।। १९ ।।

ॐ ह्रीं स्वद्रव्यध्यानफलनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १९३ ।।

अब , शुद्धात्मा का ध्यान मोक्ष और स्वर्ग का दाता है, यह दृष्टान्तपूर्वक बताते हैं – (हरिगीत)

शुद्धात्मा को ध्यावते जो योगि जिनवरमत विषैं ।
निर्वाणपद को प्राप्त हों तब क्यों न पावें स्वर्ग वे ।। २० ।।

(गाथा)

आदसहावादण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरिसीहिं।। १७ ।।
दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं।
सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवदि सद्दव्वं।। १८ ।।
जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्मुहा दु सुचरित्ता।
ते जिणवराण मग्गे अणुलग्गा लहहिं णिव्वाणं।। १९ ।।
जिणवरमएण जोई झाणे झाएह सुद्धमप्पाणं।
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं।। २० ।।

गुरु भार लेकर एक दिन में जाँय जो योजन शतक ।
जावे न क्यों क्रोशार्द्ध में इस भुवनतल में लोक में ।। २१ ।।

जो अकेला जीत ले जब कोटिभट संग्राम में ।
तब एक जन को क्यों न जीते वह सुभट संग्राम में ।। २२ ।।

शुभभाव-तप से स्वर्ग-सुख सब प्राप्त करते लोक में ।
पाया सो पाया सहजसुख निजध्यान से परलोक में ।। २३ ।।

ज्यों शोधने से शुद्ध होता स्वर्ण बस इसतरह ही ।
हो आतमा परमातमा कालादि लब्धि प्राप्त कर ।। २४ ।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपुरस्सर-शुद्धात्मध्यानैव मोक्षस्वर्गकारणनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १९४ ।।

अब संसार में व्रतादिश्रेष्ठ हैं, अव्रतादि नहीं यह बताते हैं -

(हरिगीत)

ज्यों धूप से छाया में रहना श्रेष्ठ है बस उसतरह ।
अव्रतों से नरक व्रत से स्वर्ग पाना श्रेष्ठ है ।। २५ ।।

(गाथा)

जो जाइ जोयणसयं दियहेणेक्केण लेवि गुरुभारं।
सो किं कोसद्धं पि हु ण सक्कए जाउ भुवणयले।। २१ ।।
जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहिं सव्वेहिं।
सो किं जिप्पइ इक्किं णरेण संगामए सुहडो।। २२ ।।
सग्गं तवेण सव्वो वि पावए तहिं वि झाणजोएण।
जो पावइ सो पावइ परलोए सासयं सोक्खं।। २३ ।।
अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य।
कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि।। २४ ।।
वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं।। २५ ।।

जो भव्यजन संसार-सागर पार होना चाहते ।
वे कर्म ईंधन-दहन निज शुद्धात्मा को ध्यावते ।। २६ ।।

ॐ ह्रीं संसारावस्थायां व्रतादिश्रेष्ठत्वप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं.....।। १९५ ।।

अब आत्मा का ध्यान करने की विधि बताते हैं -

(हरिगीत)

अरे मुनिजन मान-मद आदिक कषायें छोड़कर ।
लोक के व्यवहार से हों विरत ध्याते आतमा ।। २७ ।।
मिथ्यात्व एवं पाप-पुन अज्ञान तज मन-वचन से ।
अर मौन रह योगस्थ योगी आतमा को ध्यावते ।। २८ ।।
दिखाई दे जो मुझे वह रूप कुछ जाने नहीं ।
मैं करूँ किससे बात मैं तो एक ज्ञायकभाव हूँ ।। २९ ।।

ॐ ह्रीं ध्यानविधिनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १९६ ।।

अब ध्यान का फल बताते हैं -

(हरिगीत)

सर्वास्रवों के रोध से संचित करम खप जाय सब ।
जिनदेव के इस कथन को योगस्थ योगी जानते।। ३० ।।

ॐ ह्रीं ध्यानफलप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १९७ ।।

(गाथा)

जो इच्छइ णिस्सरिदुं संसारमहण्णवाउ रुंद्दाओ।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं।। २६ ।।
सव्वे कसाय मोत्तुं गारवमयरायदोसवामोहं।
लोयववहारविरदो अप्पा झाएह झाणत्थो।। २७ ।।
मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण।
मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अप्पा।। २८ ।।
जं मया दिस्सदे रूवं तं ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे णेव तम्हा जंपेमि केण हं।। २९ ।।
सव्वासवणिरोहेण कम्मं खवदि संचिदं।
जोयत्थो जाणए जोई जिणदेवेण भासियं।। ३० ।।

अब कौन जीव आत्मकार्य करता है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जो सो रहा व्यवहार में वह जागता निज कार्य में ।
जो जागता व्यवहार में वह सो रहा निज कार्य में ।। ३१ ।।
इमि जान जोगी छोड़ सब व्यवहार सर्वप्रकार से ।
जिनवर कथित परमातमा का ध्यान धरते सदा ही ।। ३२ ।।

ॐ ह्रीं आत्मकार्यप्रेरक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १९८ ।।

अब ध्यान और अध्ययन की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

पंच समिति महाव्रत अर तीन गुप्ति धर यती ।
रत्नत्रय से युक्त होकर ध्यान अर अध्ययन करो ।। ३३ ।।

ॐ ह्रीं ध्यानाध्ययनप्रेरक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १९९ ।।

अब आराधक का स्वरूप और फल बताते हैं –

(हरिगीत)

आराधना करते हुये को अराधक कहते सभी ।
आराधना का फल सुनो बस एक केवलज्ञान है ।। ३४ ।।

ॐ ह्रीं आराधकस्वरूपतत्फलप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २०० ।।

(गाथा)

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे।। ३१ ।।
इय जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेहिं।। ३२ ।।
पंचमहव्वयजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
रयणत्तयसंजुत्तो झाणज्झयणं सया कुणह।। ३३ ।।
रयणत्तयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो।
आराहणविहाणं तस्स फलं केवलं णाणं।। ३४ ।।

अब शुद्धात्मा का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी आतमा सिध शुद्ध है ।
यह कहा जिनवरदेव ने तुम स्वयं केवलज्ञानमय ।। ३५ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मस्वरूपप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २०१ ।।

अब आत्मा का ध्यान ही रत्नत्रय की आराधना है –

(हरिगीत)

रतनत्रय जिनवर कथित आराधना जो यति करें ।
वे धरें आतम ध्यान ही संदेह इसमें रंच ना ।। ३६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मध्यानैव रत्नत्रयस्याराधना-इतिनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २०२ ।।

अब रत्नत्रय का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

जानना ही ज्ञान है अरु देखना दर्शन कहा ।
पुण्य-पाप का परिहार चारित यही जिनवर ने कहा ।। ३७ ।।
तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है तत्ग्रहण सम्यग्ज्ञान है ।
जिनदेव ने ऐसा कहा परिहार ही चारित्र है ।। ३८ ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयस्वरूपप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २०३ ।।

(गाथा)

सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य।
सो जिणवरेहिं भणिओ जाण तुमं केवलं णाणं।। ३५ ।।
रयणत्तयं पि जोई आराहइ जो हु जिणवरमएण।
सो झायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो।। ३६ ।।
जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेयं।
तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं।। ३७ ।।
तच्चरुई सम्मत्तं तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं।
चारित्तं परिहारो परूवियं जिणवरिंदेहिं।। ३८ ।।

अब सम्यग्दर्शन के माहात्म्य को बताते हैं –

(हरिगीत)

दृग–शुद्ध हैं वे शुद्ध उनको नियम से निर्वाण हो ।
दृग–भ्रष्ट हैं जो पुरुष उनको नहीं इच्छित लाभ हो ।। ३९ ।।
उपदेश का यह सार जन्म–जरा–मरण का हरणकर ।
समदृष्टि जो मानें इसे वे श्रमण–श्रावक कहे हैं ।। ४० ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनमाहात्म्यनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २०४ ।।

अब सम्यग्ज्ञान का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

यह सर्वदर्शी का कथन कि जीव और अजीव की ।
भिन–भिन्नता को जानना ही एक सम्यग्ज्ञान है ।। ४१ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानस्वरूपप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २०५ ।।

अब सम्यग्चारित्र का स्वरूप बताते हैं–

(हरिगीत)

इमि जान करना त्याग सब ही पुण्य एवं पाप का ।
चारित्र है यह निर्विकल्पक कथन यह जिनदेव का ।। ४२ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्चारित्रस्वरूपनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २०६ ।।

(गाथा)

दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं।
दंसणविहीणपुरिसो ण लहइ तं इच्छिय लाहं।। ३९ ।।
इय उवएसं सारं जरमरणहरं खु मण्णए जं तु।
तं सम्मत्तं भणियं सवणाणं सावयाणं पि।। ४० ।।
जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएण।
तं सण्णाणं भणियं अवियत्थं सव्वदरसीहिं।। ४१ ।।
जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं।
तं चारित्तं भणियं अवियप्प कम्मरहिएहिं।। ४२ ।।

अब रत्नत्रय सहित तप संयम और समिति का फल कहते हैं–

(हरिगीत)

रतनत्रय से युक्त हो जो तप करे संयम धरे ।
वह ध्यान धर निज आतमा का परमपद को प्राप्त हो ।। ४३ ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयसहिततपादिकफलनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि...।। २०७ ।।

अब परमात्मा को ध्यान करने की विधि और उसका फल बताते हैं–

(हरिगीत)

रुष–राग का परिहार कर त्रययोग से त्रयकाल में ।
त्रयशल्य विरहित रतनत्रय धर योगि ध्यावे आत्मा ।। ४४ ।।
जो जीव माया–मान–लालच–क्रोध को तज शुद्ध हो ।
निर्मल–स्वभाव धरे वही नर परमसुख को प्राप्त हो ।। ४५ ।।

ॐ ह्रीं परमात्मध्यानविधिफलयोश्चनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं ..।। २०८ ।।

अब कौन जीव सिद्धसुख को प्राप्त नहीं करेंगे वह बताते हैं–

(हरिगीत)

जो रुद्र विषय–कषाय युत जिन भावना से रहित हैं ।
जिनलिंग से हैं पराङ्मुख वे सिद्धसुख पावें नहीं ।। ४६ ।।

ॐ ह्रीं विषय–कषायभावनानिषेधक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २०९ ।।

(गाथा)

जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।
सो पावइ परमपयं झायंतो अप्पयं सुद्धं ।। ४३ ।।
तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं तियरहिओ तह तिएण परियरिओ।
दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा झायए जोई ।। ४४ ।।
मयमायकोहरहिओ लोहेण विवज्जिओ य जो जीवो।
णिम्मलसहावजुत्तो सो पावइ उत्तमं सोक्खं ।। ४५ ।।
विसयकसाएहि जुदो रुद्दो परमप्पभावरहियमणो।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणमुद्दपरम्मुहो जीवो ।। ४६ ।।

अब जिनमुद्रा मोक्ष का कारण है, यह बताते हैं–

(हरिगीत)

जिनवर कथित जिनलिंग ही है सिद्धसुख यदि स्वप्न में।
भी ना रुचे तो जान लो भव गहन वन में वे रुलें ।। ४७ ।।

ॐ ह्रीं जिनमुद्रामोक्षकारणनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २१० ।।

अब परमात्मा का ध्यान करने का फल बताते हैं–

(हरिगीत)

परमात्मा के ध्यान से हो नाश लोभ कषाय का ।
नवकर्म का आस्रव रुके यह कथन जिनवरदेव का।। ४८।।
जो योगि सम्यक्दर्शपूर्वक चारित्र दृढ़ धारण करे ।
निज आतमा का ध्यानधर वह मुक्ति की प्राप्ति करे ।। ४९ ।।

ॐ ह्रीं परमात्मध्यानफलनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २११ ।।

अब चारित्र का स्वरूप कहते हैं–

(हरिगीत)

चारित्र ही निजधर्म है अर धर्म आत्मस्वभाव है ।
अनन्य निज परिणाम वह ही राग–द्वेष विहीन है ।। ५० ।।

ॐ ह्रीं चारित्रस्वरूपप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २१२ ।।

(गाथा)

जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण जिणवरुद्दिट्ठं।
सिविणे वि ण रुच्चइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे।। ४७ ।।
परमप्पय झायंतो जोई मुच्चेई मलदलोहेण।
णादियदि णवं कम्मं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।। ४८ ।।
होऊण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ।
झायंतो अप्पाणं परमपयं पावए जोई।। ४९ ।।
चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो।। ५० ।।

अब जीव के परिणामों की विचित्रता बताते हैं–

(हरिगीत)

फटिकमणिसम जीव शुध पर अन्य के संयोग से ।
वह अन्य–अन्य प्रतीत हो, पर मूलत: है अनन्य ही ।। ५१ ।।

ॐ ह्रीं जीवपरिणामवैचित्र्यनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २१३ ।।

अब सम्यक्ध्यान का स्वरूप बताते हैं–

(हरिगीत)

देव–गुरु का भक्त अर अनुरक्त साधक वर्ग में ।
सम्यक्सहित निज ध्यानरत ही योगि हो इस जगत में ।। ५२ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्ध्याननिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २१४ ।।

अब ज्ञानी और अज्ञानी के भेद को बताते हैं–

(हरिगीत)

उग्र तप तप अज्ञ भव–भव में न जितने क्षय करें ।
विज्ञ अन्तर्मुहूरत में कर्म उतने क्षय करें।। ५३ ।।

परद्रव्य में जो साधु करते राग शुभ के योग से ।
वे अज्ञ हैं पर विज्ञ राग नहीं करें परद्रव्य में ।। ५४ ।।

(गाथा)

जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो।
तह रागादिविजुत्तो जीवा हवदि हु अणण्णविहो।। ५१ ।।
देवगुरुम्मि य भत्तो साहम्मियसंजदेसु अणुरत्तो।
सम्मत्तमुव्वहंतो झाणरओ होदि जोई सो।। ५२ ।।
उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण।। ५३ ।।
सुहजोएण सुभावं परदव्वे कुणइ रागदो साहू।
सो तेण दु अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीओ।। ५४ ।।

निज भाव से विपरीत अर जो आस्रवों के हेतु हैं ।
जो उन्हें मानें मुक्तिमग वे साधु सचमुच अज्ञ हैं ।। ५५ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानी-अज्ञानीभेदनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २१५ ।।

अब कर्मवादी अज्ञानी का निषेध करते हैं-

(हरिगीत)

अरे जो कर्मजमति वे करें आत्मस्वभाव को ।
खण्डित अत: वे अज्ञजन जिनधर्म के दूषक कहे ।। ५६ ।।

ॐ ह्रीं कर्मवादीनिषेधक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २१६ ।।

अब मात्र भेषधारण करने का निषेध करते हैं-

(हरिगीत)

चारित रहित है ज्ञान-दर्शन हीन तप संयुक्त है ।
क्रिया भाव विहीन तो मुनिवेष से क्या साध्य है ।। ५७ ।।

ॐ ह्रीं मात्रद्रव्यलिंगनिषेधक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २१७ ।।

अब पुनः ज्ञानी और अज्ञानी का स्वरूप बताते हैं-

(हरिगीत)

जो आत्मा को अचेतन हैं मानते अज्ञानि वे ।
पर ज्ञानिजन तो आतमा को एक चेतन मानते ।। ५८ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानी-अज्ञानीस्वरूपनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २१८ ।।

(गाथा)

आसवहेदू य तहा भावं मोक्खस्स कारणं हवदि।
सो तेण दु अण्णाणी आदसहावा दु विवरीदु।। ५५ ।।
जो कम्मजादमइओ सहावणाणस्स खंडदूसयरो।
सो तेण दु अण्णाणी जिणसासणदूसगो भणिदो।। ५६ ।।
णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहिं संजुत्तं।
अण्णेसु भावरहियं लिंगग्गहणेण किं सोक्खं।। ५७ ।।
अच्चेयणं पि चेदा जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी।
सो पुण णाणी भणिओ जो मण्णइ चेयणे चेदा।। ५८ ।।

अब दृष्टान्तपूर्वक तप की महिमा बताते हैं–

(हरिगीत)

निरर्थक तप ज्ञान विरहित तप रहित जो ज्ञान है ।
यदि ज्ञान तप हों साथ तो निर्वाणपद की प्राप्ति हो ।। ५९ ।।
क्योंकि चारों ज्ञान से भी महामण्डित तीर्थंकर ।
भी तप करें बस इसलिए तप करो सम्यग्ज्ञान युत।। ६० ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानसहित-तपमहिमानिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि...।। २१९ ।।

अब भावलिंग को ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं–

(हरिगीत)

स्वानुभव से भ्रष्ट एवं शून्य अन्तरलिंग से ।
बहिर्लिंग जो धारण करें वे मोक्षमग नाशक कहे ।। ६१ ।।

ॐ ह्रीं भावलिंगग्रहणप्रेरक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २२० ।।

अब आत्मभावना की प्रेरणा देते हैं–

(हरिगीत)

अनुकूलता में जो सहज प्रतिकूलता में नष्ट हो ।
इसलिये प्रतिकूलता में करो आतम साधना ।। ६२ ।।

ॐ ह्रीं आत्मभावनाप्रेरक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २२१ ।।

(गाथा)

तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ।। ५९ ।।
धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि ।। ६० ।।
बाहिरलिंगेण जुदो अब्भंतरलिंगरहियपरियम्मो।
सो सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहू ।। ६१ ।।
सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए ।। ६२ ।।

अब आत्मध्यान की प्रेरणा देते हैं–

(हरिगीत)

आहार निद्रा और आसन जीत ध्याओ आतमा ।
बस यही है जिनदेव का मत यही गुरु की आज्ञा ।। ६३ ।।

ॐ ह्रीं आत्मध्यानप्रेरक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २२२ ।।

अब आत्मा का स्वरूप बताते हैं–

(हरिगीत)

ज्ञान दर्शन चरित मय जो आतमा जिनवर कहा ।
गुरु की कृपा से जानकर नित ध्यान उसका ही करो ।। ६४ ।।

ॐ ह्रीं आत्मस्वरूपनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २२३ ।।

अब आत्मभावना की दुर्लभता को बताते हैं–

(हरिगीत)

आत्मा का जानना भाना व करना अनुभवन ।
तथा विषयों से विरक्ति उत्तरोत्तर है कठिन।। ६५ ।।

ॐ ह्रीं आत्मभावनादुर्लभत्वप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २२४ ।।

अब विषयों से विरक्त होने की प्रेरणा देते हैं–

(हरिगीत)

जबतक विषय में प्रवृत्ति तबतक न आतमज्ञान हो ।
इसलिए आतम जानते योगी विषय विरक्त हों।। ६६।।

(गाथा)

आहारासणणिद्दाजयं च काऊण जिनवरमएण।
झायव्वो णिय अप्पा णाऊणं गुरुपसाएण।। ६३ ।।
अप्पा चरित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा।
सो झायव्वो णिच्चं णाऊणं गुरुपसाएण।। ६४ ।।
दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियसहावपुरिसो विसयेसु विरच्चए दुक्खं।। ६५ ।।
ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं।। ६६ ।।

निज आतमा को जानकर भी मूढ़ रमते विषय में ।
हो स्वानुभव से भ्रष्ट भ्रमते चतुर्गति संसार में ।। ६७ ।।

अरे विषय विरक्त हो निज आतमा को जानकर ।
जो तपोगुण से युक्त हों वे चतुर्गति से मुक्त हों ।। ६८ ।।

ॐ ह्रीं विषयविरक्तिप्रेरक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २२५ ।।

अब राग छोड़ने की प्रेरणा देते हैं–

(हरिगीत)

यदि मोह से पर द्रव्य में रति रहे अणु प्रमाण में ।
विपरीतता के हेतु से वे मूढ़ अज्ञानी रहें ।। ६९ ।।

शुद्ध दर्शन दृढ़ चरित एवं विषय विरक्त नर ।
निर्वाण को पाते सहज निज आतमा का ध्यान धर ।। ७० ।।

पर द्रव्य में जो राग वह संसार कारण जानना ।
इसलिये योगी करें नित निज आतमा की भावना ।। ७१ ।।

ॐ ह्रीं रागत्यागप्रेरक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २२६ ।।

(गाथा)

अप्पा णाऊण णरा केई सब्भावभावपब्भट्ठा।
हिडंति चाउरंगं विसएसु विमोहिया मूढा।। ६७ ।।
जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो।। ६८ ।।
परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो।
सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ।। ६९ ।।
अप्पा झायंताणं दंसणसुद्धीण दिढचरित्ताणं।
होदि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं।। ७० ।।
जेण रागो परे दव्वे संसारस्स हि कारणं।
तेणावि जोइणो णिच्चं कुज्जा अप्पे सभावणं।। ७१ ।।

अब समभाव ही चारित्र है, यह बताते हैं–

(हरिगीत)

निन्दा–प्रशंसा दुक्ख–सुख अर शत्रु–बंधु–मित्र में ।
अनुकूल अर प्रतिकूल में समभाव ही चारित्र है ।। ७२ ।।

ॐ ह्रीं समभावचारित्रप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २२७ ।।

अब जो जीव ध्यान का निषेध करते हैं, उनका स्वरूप समझाते हुये उन्हें समझाते हैं–

(हरिगीत)

जिनके नहीं व्रत–समिति चर्या भ्रष्ट हैं शुधभाव से ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान योग नहीं बने ।। ७३ ।।

जो शिवविमुख नर भोग में रत ज्ञानदर्शन रहित हैं ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान–योग नहीं बने ।। ७४ ।।

जो मूढ़ अज्ञानी तथा व्रत समिति गुप्ति रहित हैं ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान योग नहीं बने ।। ७५ ।।

भरत–पंचमकाल में निजभाव में थित संत के ।
नित धर्मध्यान रहे न माने जीव जो अज्ञानि वे ।। ७६।।

(गाथा)

णिंदाए य पसंसाए दुक्खे य सुहएसु य।
सत्तूणं चेव बंधूणं चारित्तं समभावदो ।। ७२ ।।
चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभावपब्भट्ठा।
केई जंपति णरा ण हु कालो झाणजोयस्स ।। ७३ ।।
सम्मत्तणाणरहिओ अभव्वजीवो हु मोक्खपरिमुक्को।
संसारसुहे सुरदो ण हु कालो भणइ झाणस्स ।। ७४ ।।
पंचसु महव्वदेसु य पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
जो मूढो अण्णाणी ण हु कालो भणइ झाणस्स ।। ७५ ।।
भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ।। ७६ ।।

रतनत्रय से शुद्ध आतम आतमा का ध्यान धर ।
आज भी हों इन्द्र आदिक प्राप्त करते मुक्ति फिर ।। ७७ ।।

ॐ ह्रीं अद्यापिधर्मध्यानसमर्थक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २२८ ।।

जिन लिंग धर कर पाप करते पाप मोहितमति जो ।
वे च्युत हुए हैं मुक्तिमग से दुर्गति दुर्मति हो।। ७८ ।।

हैं परिग्रही अध:कर्मरत आसक्त जो वस्त्रादि में ।
अर याचना जो करें वे सब मुक्तिमग से बाह्य हैं ।। ७९ ।।

ॐ ह्रीं सवस्त्रमुक्तिनिषेधक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २२९ ।।

अब मोक्षमार्गी मुनि का स्वरूप कहते हैं–

(हरिगीत)

रे मुक्त हैं जो जितकषायी पाप के आरंभ से ।
परिषहजयी निर्ग्रंथ वे ही मुक्तिमारग में कहे ।। ८० ।।

त्रैलोक में मेरा न कोई मैं अकेला आतमा ।
इस भावना से योगिजन पाते सदा सुख शास्वता ।। ८१ ।।

जो ध्यानरत सुचरित्र एवं देव–गुरु के भक्त हैं ।
संसार–देह विरक्त वे मुनि मुक्तिमारग में कहे ।। ८२ ।।

(गाथा)

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहिं इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।। ७७ ।।
जे पावमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।। ७८ ।।
जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाही य जायणासीला।
आधाकम्मम्मि रय ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।। ७९ ।।
णिग्गंथमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि।। ८० ।।
उद्धद्धमज्झलोये केई मज्झं ण अहयमेगागी।
इय भावणाए जोई पावंति हु सासयं सोक्खं।। ८१ ।।
देवगुरूणं भत्ता णिव्वेयपरंपरा विचिंतिंता।
झाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्खमग्गम्मि।। ८२ ।।

निजद्रव्यरत यह आतमा ही योगि चारितवंत है ।
यह ही बने परमातमा परमार्थनय का कथन है ।। ८३ ।।

ज्ञानदर्शनमय अवस्थित पुरुष के आकार में ।
ध्याते सदा जो योगि वे ही पापहर निर्द्वन्द हैं ।। ८४ ।।

ॐ ह्रीं मोक्षमार्गीमुनिस्वरूपप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि..।। २३० ।।

अब श्रावक को उपदेश देते हैं–

(हरिगीत)

जिनवरकथित उपदेश यह तो कहा श्रमणों के लिए ।
अब सुनो सुखसिद्धिकर उपदेश श्रावक के लिए ।। ८५ ।।

सबसे प्रथम सम्यक्त्व निर्मल सर्व दोषों से रहित ।
कर्मक्षय के लिये श्रावक–श्राविका धारण करें ।। ८६ ।।

ॐ ह्रीं श्रावकोपदेशप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २३१ ।।

अब सम्यक्त्व की महिमा बताते हैं–

(हरिगीत)

अरे सम्यग्दृष्टि है सम्यक्त्व का ध्याता गृही ।
दुष्टाष्ट कर्मों को दहे सम्यक्त्व परिणत जीव ही ।। ८७ ।।

(गाथा)

णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं।। ८३ ।।
पुरिसायारो अप्पा जोई वरणाणदंसणसमग्गो।
जो झायदि सो जोई पावहरो हवदि णिद्वंदो ।। ८४ ।।
एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं।। ८५ ।।
गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंपं।
तं झाणे झाइज्जइ सावय दुक्खक्खयट्ठाए।। ८६ ।।
सम्मत्तं जो झायइ सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि।। ८७ ।।

मुक्ति गये या जायेंगे माहात्म्य है सम्यक्त्व का ।
यह जान लो हे भव्यजन ! इससे अधिक अब कहें क्या ।। ८८ ।।

वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं वे शूर नर पण्डित वही ।
दुःस्वप्न में सम्यक्त्व को जिनने मलीन किया नहीं ।। ८९ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वमाहात्म्यप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २३२ ।।

अब सम्यक्त्व का स्वरूप बताते हैं–

(हरिगीत)

सब दोष विरहित देव अर हिंसारहित जिनधर्म में ।
निर्ग्रन्थ गुरु के वचन में श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ।। ९० ।।

यथाजातस्वरूप संयत सर्व संग विमुक्त जो ।
पर की अपेक्षा रहित लिंग जो मानते समदृष्टि वे ।। ९१ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वस्वरूपप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २३३ ।।

अब मिथ्यादृष्टि का स्वरूप बताते हैं–

(हरिगीत)

जो लाज–भय से नमें कुत्सित लिंग कुत्सित देव को ।
और सेवें धर्म कुत्सित जीव मिथ्यादृष्टि वे ।। ९२ ।।

(गाथा)

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं ।। ८८ ।।
ते धण्णा सुकयत्था ते सुरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ।। ८९ ।।
हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं ।। ९० ।।
जहजायरूवरूवं सुसंजयं सव्वसंगपरिचत्तं।
लिंगं ण परावेक्खं जो मण्णइ तस्स सम्मत्तं ।। ९१ ।।
कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च बंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो हु ।। ९२ ।।

अरे रागी देवता अर स्वपरपेक्षा लिंगधर ।
व असंयत की वंदना न करें सम्यग्दृष्टिजन ।। ९३ ।।

जिनदेव देशित धर्म की श्रद्धा करें सद्दृष्टिजन ।
विपरीतता धारण करें बस सभी मिथ्यादृष्टिजन ।। ९४ ।।

अरे मिथ्यादृष्टिजन इस सुखरहित संसार में ।
प्रचुर जन्म-जरा-मरण के दुख हजारों भोगते ।। ९५ ।।

ॐ ह्रीं मिथ्यादृष्टिस्वरूपनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २३४ ।।

अब संक्षेप में सम्यक्त्व को ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं-

(हरिगीत)

जानकर सम्यक्त्व के गुण-दोष मिथ्याभाव के ।
जो रुचे वह ही करो अधिक प्रलाप से है लाभ क्या ।। ९६ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वप्रेरक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २३५ ।।

अब द्रव्यलिंगपूर्वक भावलिंग के ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं-

(हरिगीत)

छोड़ा परिग्रह बाह्य मिथ्याभाव को नहिं छोड़ते ।
वे मौन ध्यान धरें परन्तु आतमा नहीं जानते ।। ९७ ।।

(गाथा)

सपरावेक्खं लिंगं राई देवं असंजयं वंदे।
मण्णइ मिच्छादिट्ठी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्तो।। ९३ ।।
सम्माइट्ठी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।
विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।। ९४ ।।
मिच्छादिट्ठी जो सो संसारे संसरेइ सुहरहिओ।
जम्मजरमरणपउरे दुक्खसहस्साउले जीवो।। ९५ ।।
सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु।
जं ते मणस्स रुच्चइ किं बहुणा पलविएण तु।। ९६ ।।
बाहिरसंगविमुक्को ण वि मुक्को मिच्छ भाव णिग्गंथो।
किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि अप्पसमभावं।। ९७ ।।

मूलगुण उच्छेद बाह्य क्रिया करें जो साधुजन ।
हैं विराधक जिनलिंग के वे मुक्ति-सुख पाते नहीं ।। ९८ ।।

आत्मज्ञान बिना विविध-विध विविध क्रिया-कलाप सब ।
और जप-तप पद्म-आसन क्या करेंगे आत्महित ।। ९९ ।।

ॐ ह्रीं भावलिंगग्रहणप्रेरक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २३६ ।।

अब आत्मस्वभाव के प्ररूपक शास्त्रों को पढ़ने की प्रेरणा देते हैं-

(हरिगीत)

यदि पढ़े बहुश्रुत और विविध क्रिया-कलाप करे बहुत ।
पर आत्मा के भान बिन बालाचरण अर बालश्रुत ।। १०० ।।

ॐ ह्रीं आत्मस्वभावविपरीत-अध्ययनक्रियानिषेधक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २३७ ।।

अब ऐसे साधु ही मोक्ष प्राप्त करते हैं, यह बताते हैं-

(हरिगीत)

निजसुख निरत भवसुख विरत परद्रव्य से जो पराङ्मुख ।
वैराग्य तत्पर गुणविभूषित ध्यान धर अध्ययन सुरत ।। १०१ ।।

(गाथा)

मूलगुणं छित्तूण य बाहिरकम्मं करेइ जो साहू।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणलिंगविराहगो णियदं।। ९८ ।।
किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खवणं तु।
किं काहिदि आदावं आदसहावस्स विवरीदो।। ९९ ।।
जदि पढदि बहु सुदाणि य जदि काहिदि बहुविहं च चारित्तं।
तं बालसुदं चरणं हवेइ अप्पस्स विवरीदं।। १०० ।।
वेरग्गपरो साहू परदव्वपरम्मुहो य जो होदि।
संसारसुहविरत्तो सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो।। १०१ ।।

आदेय क्या है हेय क्या – यह जानते जो साधुगण ।
वे प्राप्त करते थान उत्तम जो अनन्तानन्दमय ।। १०२ ।।

ॐ ह्रीं मोक्षमार्गरतसाधुस्वरूपप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २३८ ।।

अब आत्मा ही सर्वोत्कृष्ट है, यह बताते हैं–

(हरिगीत)

जिनको नमे थुति करे जिनकी ध्यान जिनका जग करे ।
वे नमें ध्यावें थुति करें तू उसे ही पहिचान ले ।। १०३ ।।
अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठी पण ।
सब आतमा की अवस्थायें आत्मा ही है शरण ।। १०४ ।।
सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण ।
सब आतमा की अवस्थायें आत्मा ही है शरण ।। १०५ ।।

ॐ ह्रीं श्रेष्ठत्वप्ररूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २३९ ।।

अब इस ग्रन्थ को पढ़ने का फल बताते हैं–

(हरिगीत)

जिनवर कथित यह मोक्षपाहुड जो पुरुष अति प्रीति से ।
अध्ययन करें भावें सुनें वे परमसुख को प्राप्त हों ।। १०६ ।।

ॐ ह्रीं ग्रन्थफलनिरूपक श्रीमोक्षपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २४० ।।

(गाथा)

गुणगणविहूसियंगो हेयोपादेयणिच्छिदो साहू।
झाणज्झयणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं।। १०२ ।।
णविएहिं जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं।
थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह।। १०३ ।।
अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।। १०४ ।।
सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारितं हि सत्तवं चेव।
चउरो चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।। १०५ ।।
एवं जिणपण्णत्तं मोक्खस्स य पाहुडं सुभत्तीए।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं।। १०६ ।।

जयमाला

(दोहा)

पूजन अर अर्घ्यावली पूरण हुई अनूप।
अब जयमाला में सुनो मोक्ष तत्त्व का रूप।। १ ।।

(हरिगीत)

मोक्षपाहुड़ ग्रन्थ यह निर्ग्रन्थ मुनिवर ने रचा।
रे मोक्ष कहते हैं किसे संक्षेप में समझा दिया।।
निज आतमा का आतमा में लीन होना मोक्ष है।
अर भव दुःखों से मुक्त होना आतमा का मोक्ष है।। २ ।।

देहादि में एकत्व धारण करें वे बहिरात्मा।
निज आत्म में एकत्व धारण करें अन्तर आत्मा।।
जो आतमा में लीन हो सर्वज्ञता को प्राप्त हों।
वे बन गये हैं जान लो पर्याय में परमात्मा।। ३ ।।

सभी मिथ्यादृष्टि हैं इस लोक में बहिरात्मा।
और सम्यग्दृष्टि आतम सभी अन्तर आतमा।।
वीतरागी सर्वज्ञानी सिद्ध अर अरहंत जिन।
वे सभी हैं जान लो पर्याय में परमात्मा।। ४ ।।

मुनिराज भी जिसको नमें अर भाव से स्तुति करें।
परमात्मा भी करें जिसका ध्यान अपनापन करें।।
और जिसके ध्यान से आतम बने परमात्मा।
वह हमारा आतमा ही है परम परमात्मा।। ५ ।।

अतः अपने आत्मा में अरे अपनापन करो।
और जानो आत्मा को आत्मा में रम रहो।।
अरे अपने आतमा का ध्यान तुम नित प्रति करो।
बन जावोगे पर्याय में परमात्मा निश्चित रहो।। ६ ।।

अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठी पण।
सब आतमा की अवस्थायें आतमा ही है शरण।।
सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण ।
सब आतमा की अवस्थायें आतमा ही है शरण।। ७ ।।

निज आतमा के ज्ञान से श्रद्धान से अर ध्यान से।
यह आतमा परमातमा बनता अरे पर्याय में।।
अतः पर परमात्मा की शरण में क्यों जाऊँ मैं।
निज आतमा की शरण से परमात्मा बन जाऊँ मैं।। ८ ।।

अरे पर परमातमा के ध्यान से पुण बंध हो।
और अपने आतमा के ध्यान से निर्बंध हो।।
स्याद्वादी जिनागम में समागत यह तथ्य है।
परमात्मा की दिव्यध्वनि में समागत यह सत्य है।। ९ ।।

परद्रव्य से हो दुर्गति निजद्रव्य से होती सुगति ।
यह जानकर रति करो निज में अर करो पर से विरति।।
परद्रव्य से हो पराङ्मुख निजद्रव्य को जो ध्यावते ।
जिनमार्ग में संलग्न वे निर्वाणपद को प्राप्त हों।। १० ।।

अरे पर परमातमा भी तो हमें परद्रव्य हैं।
और उनका ध्यान भी परद्रव्य का ही ध्यान है।।
एक अपना आतमा स्व-द्रव्य है स्व-भाव है।
अतः केवल एक उसका ध्यान ही कर्त्तव्य है।। ११ ।।

इसलिये जो मुक्त होना चाहते हैं भव्यजन।
वे भव्यजन निज आतमा का ध्यान ही जमकर करें।।
और सारे जगत से जो अपनपन वह छोड़ दें।
और अपने ध्यान को केवल स्वयं में जोड़ दें।। १२ ।।

परद्रव्य में जो साधु करते राग शुभ के योग से।
वे अज्ञ हैं पर विज्ञ राग नहीं करें परद्रव्य में।।
निजद्रव्यरत यह आतमा ही योगि चारितवंत है।
यह ही बने परमातमा परमार्थनय का कथन है।। १३ ।।

पर द्रव्य में जो राग वह संसार कारण जानना।
इसलिये योगी करें नित निज आतमा की भावना।।
शुद्ध दर्शन दृढ़ चरित एवं विषय विरक्त नर।
निर्वाण को पाते सहज निज आतमा का ध्यान धर।। १४ ।।

परमातमा कहते स्वयं तुम स्वयं को जानो जमो।
और अपने आप में ही निरन्तर तुम रत रहो।।
यदि स्वयं में ही जम सके अर स्वयं में ही रम सके।
तो नियम से पर्याय में परमात्मा बन जाओगे।। १५ ।।

मोक्षपाहुड़ में कहा कि मोक्ष का यह मार्ग है।
यदि चाहते हो मुक्त होना इसी पर तुम चल पड़ो।।
यह एक ही है मार्ग एवं अन्य सब उन्मार्ग हैं।
मुक्त होने के लिये यह एक ही सन्मार्ग है।। १६ ।।

आतम बने परमातमा जो जो जगत में आज तक।
वे बने केवल एक अपने आतमा के ध्यान से।।
और भावी काल में जो मुक्त होंगे लोक में।
वे भी सभी निज आतमा के ध्यान से ही मुक्त हों।। १७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमोक्षपाहुड़परमागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

अरे स्वयं की साधना निर्ग्रन्थों का पंथ।
मोक्ष मोक्ष के मार्ग का प्रतिपादक यह ग्रंथ।। १८ ।।
इसप्रकार पूरा हुआ पूजन और विधान।
भक्तिभाव से किया है अपनी शक्ति प्रमाण।। १९ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

८

लिंगपाहुड़ और शीलपाहुड़ पूजन

स्थापना

(रोला)

अरे लिंगपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
नग्न दिगम्बर संतों का स्वरूप समझाया ।।
जैन लिंग के धारक मुनिवर कैसे होते।
अति कठोर भाषा में सबको यह बतलाया ।। १।।
और शीलपाहुड़ में सबको यह समझाते।
जिन दर्शन में अरे शील कहते हैं किसको।।
नग्न दिगम्बर संत शील के धारी होते।
और शील है परम धरम समझाते सबको ।। २।।

(दोहा)

नग्न दिगम्बर लिंग को धारे भविजन संत।
और शील पालन करें आ जावे भव अन्त।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीलिंग-शीलपाहुड़परमागम अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीलिंग-शीलपाहुड़परमागम अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीलिंग-शीलपाहुड़परमागम अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।
(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(वीर)

जल

गंगाजल सम निर्मल जल यह अर्पण करते हैं हम सब।
जन्म जरा मृतु का अभाव हो जीवन हो सबका निर्मल।।
अरे लिंगपाहुड़ में इसकी[१] सब बातें समझाई हैं।
और शीलपाहुड़ में उसकी[२] महिमा खूब बताई है।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीलिंग-शीलपाहुड़परमागमाय जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

---

१. लिंग की २. शील की ३. देवोपनीत = देवों द्वारा लाये गये।

चन्दन

चन्दन सम यह शीतल आतम भव आतप का नाशक है।
अरे कषायों की गर्मी का केवल आतम शामक है।।
अरे लिंगपाहुड़ में इसकी सब बातें समझाई हैं।
और शीलपाहुड़ में उसकी महिमा खूब बताई है।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीलिंग-शीलपाहुड़परमागमाय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

ये अक्षत अक्षत आतम के ही प्रतीक मन भावन हैं।
इनको अर्पण करते हम सब अक्षत पद के चाहक हैं।।
अरे लिंगपाहुड़ में इसकी सब बातें समझाई हैं।
और शीलपाहुड़ में उसकी महिमा खूब बताई है।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीलिंग-शीलपाहुड़परमागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

अरे सुमन से अर्पण करता देवों से उपनीत[३] सुमन।
मन पावन हो, शान्त चित्त हो सदाचारमय हो जीवन।।
अरे लिंगपाहुड़ में इसकी सब बातें समझाई हैं।
और शीलपाहुड़ में उसकी महिमा खूब बताई है।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीलिंग-शीलपाहुड़परमागमाय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नेवैद्य

जिन्हें देख आकर्षित होते ऐसे मधुर सरस पकवान।
खाये हैं पर भूख मिटी ना स्वाहा करता हूँ भगवान।।
अरे लिंगपाहुड़ में इसकी सब बातें समझाई हैं।
और शीलपाहुड़ में उसकी महिमा खूब बताई है।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीलिंग-शीलपाहुड़परमागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

अरे रतनमय दीपक केवल घर–आँगन में करे प्रकाश।
किन्तु ज्ञानदीपक अद्‌भुत है सारे जग में करे प्रकाश।।
अरे लिंगपाहुड़ में इसकी सब बातें समझाई हैं।
और शीलपाहुड़ में उसकी महिमा खूब बताई है।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीलिंग–शीलपाहुड़परमागमाय मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

मक्खी मच्छर सब उड़ जावें धूप अग्नि में खेने से।
किन्तु कर्म तो पीछा छोड़े निज आतम के सेने से।।
अरे लिंगपाहुड़ में इसकी सब बातें समझाई हैं।
और शीलपाहुड़ में उसकी महिमा खूब बताई है।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

मुक्तिमार्ग में सफल हुये ना ये फल अर्पण करने से।
सफल हुये हैं वही जीव जो निज आतम में रमते हैं।।
अरे लिंगपाहुड़ में इसकी सब बातें समझाई हैं।
और शीलपाहुड़ में उसकी महिमा खूब बताई है।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीलिंग–शीलपाहुड़परमागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

जीवन में उपयोगी जो हैं उन्हीं वस्तुओं का समुदाय।
कहलाता है अर्घ्य उसे अर्पण करता हूँ मैं असहाय।।
अरे लिंगपाहुड़ में इसकी सब बातें समझाई हैं।
और शीलपाहुड़ में उसकी महिमा खूब बताई है।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचारित्रपाहुड़परमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली

।। लिंगपाहुड़ ।।

(दोहा)

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।
कर्म नाशि शिवसुख लियो बंदूं तिनके पांय।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब प्रथम इष्टदेव के नमस्कारपूर्वक ग्रन्थ लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं –

(हरिगीत)

कर नमन श्री अरिहंत को सब सिद्ध को करके नमन ।
संक्षेप में मैं कह रहा हूँ, लिंगपाहुड शास्त्र यह।। १ ।।

ॐ ह्रीं इष्टदेवनमस्कारपूर्वकग्रन्थप्रतिज्ञावाक्यनिरूपक श्रीलिंगपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २४१।।

अब, भावलिंगग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

धर्म से हो लिंग केवल लिंग से न धर्म हो।
समभाव को पहिचानिये द्रवलिंग से क्या कार्य हो।। २ ।।

ॐ ह्रीं भावलिंगग्रहणप्रेरक श्रीलिंगपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २४२।।

अब द्रव्यलिंगी श्रमणाभास का स्वरूप और उसका फल बताते हैं –

(हरिगीत)

परिहास में मोहितमती धारण करें जिनलिंग जो ।
वे अज्ञजन बदनाम करते नित्य जिनवर लिंग को ।। ३ ।।

(गाथा)

काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं समासेण।। १ ।।
धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो।। २ ।।
जो पावमोहिदमदी लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
उवहसदि लिंगिभावं लिंगिम्मिय णारदो लिंगी।। ३ ।।

जो नाचते गाते बजाते वाद्य जिनवर लिंगधर ।
हैं पाप मोहितमती रे वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।। ४ ।।

जो आर्त होते जोड़ते रखते रखाते यत्न से ।
वे पाप मोहितमती हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।। ५ ।।

अर कलह करते जुआ खेलें मानमंडित नित्य जो ।
वे प्राप्त होते नरकगति को सदा ही जिन लिंगधर ।। ६ ।।

जो पाप उपहत आत्मा अब्रह्म सेवें लिंगधर ।
वे पाप मोहितमती जन संसारवन में नित भ्रमें ।। ७ ।।

जिनलिंगधर भी ज्ञान–दर्शन–चरण धारण ना करें ।
वे आर्तध्यानी द्रव्यलिंगी नंत संसारी कहे ।। ८ ।।
रे जो करावें शादियाँ कृषि वणज कर हिंसा करें ।
वे लिंगधर ये पाप कर जावें नियम से नरक में ।। ९ ।।

जो चोर लाबर लड़ावें अर यंत्र से क्रीडा करें ।
वे लिंगधर ये पाप कर जावें नियम से नरक में ।। १० ।।

(गाथा)

णच्चदि गायदि तावं वायं वाएदि लिंगरूवेण।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। ४ ।।
सम्मूहदि रक्खेदि य अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। ५ ।।
कलहं वादं जूवा णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिंगी।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण।। ६ ।।
पाओपहदभावो सेवदि य अंबभु लिंगिरूवेण।
सो पावमोहिदमदी हिंडदि संसारकंतारे।। ७ ।।
दंसणणाणचरित्ते उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण।
अट्टं झायदि झाणं अणंतसंसारिओ होदि।। ८ ।।
जो जोडेदि विवाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण।। ९ ।।
चोराण [१]लाउराण च जुद्धं विवादं च तिव्वकम्मेहिं।
जंतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिंगी णरयवासं।। १० ।।

ज्ञान-दर्शन-चरण तप संयम नियम पालन करें ।
पर दुःखी अनुभव करें तो जावें नियम से नरक में ।। ११ ।।

कन्दर्प आदि में रहें अति गृद्धता धारण करें ।
हैं छली व्याभिचारी अरे ! वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।। १२ ।।

जो कलह करते दौड़ते हैं इष्ट भोजन के लिये ।
अर परस्पर ईर्षा करें वे श्रमण जिनमार्गी नहीं ।। १३ ।।

बिना दीये ग्रहें परनिन्दा करें जो परोक्ष में ।
वे धरें यद्यपि लिंगजिन फिर भी अरे वे चोर हैं ।। १४ ।।

ईर्या समिति की जगह पृथ्वी खोदते दौड़ें गिरें ।
रे पशूवत उठकर चलें वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ।। १५ ।।

जो बंधभय से रहित पृथ्वी खोदते तरु छेदते ।
अर हरित भूमी रोंधते वे श्रमण नहीं तिर्यंच हैं ।। १६ ।।

राग करते नारियों से दूसरों को दोष दें ।
सद्ज्ञान-दर्शन रहित हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच है ।। १७ ।।

(गाथा)

दंसणणाणचरित्ते तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि।
पीडयदि वट्टमाणो पावदि लिंगी णरयवासं।। ११ ।।
कंदप्पाइय वट्टइ करमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं।
मायी लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। १२ ।।
धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काऊण भुञ्जदे पिंडं।
अवरपरूई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो।। १३ ।।
गिण्हदि अदत्तदाणं परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।
जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो।। १४ ।।
उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणादि लिंगरूवेण।
इरियावहं धारंतो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। १५ ।।
बंधो णिरओ संतो सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि।
छिंददि तरुगण बहुसो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। १६ ।।
रागं करेदि णिच्चं महिलावग्गं परं च दूसेदि।
दंसणणाणविहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। १७ ।।

श्रावकों में शिष्यगण में नेह रखते श्रमण जो ।
हीन विनयाचार से वे श्रमण नहीं तिर्यंच हैं ।। १८ ।।

इस तरह वे भ्रष्ट रहते संयतों के संघ में ।
रे जानते बहुशास्त्र फिर भी भाव से तो नष्ट हैं ।। १९ ।।

पार्श्वस्थ से भी हीन जो विश्वस्त महिलावर्ग में ।
रत ज्ञान-दर्शन-चरण दें वे नहीं पथ अपवर्ग हैं ।। २० ।।

जो पुंश्चली के हाथ से आहार लें शंशा करें ।
निज पिंड पोसें वालमुनि वे भाव से तो नष्ट हैं ।। २१ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यलिंगीश्रमणाभासस्वरूपतत्फलनिरूपक श्रीलिंगपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २४३ ।।

अब इस ग्रन्थ को पढ़ने का फल बताते हैं -

(हरिगीत)

सर्वज्ञ भाषित धर्ममय यह लिंगपाहुड जानकर ।
अप्रमत्त हो जो पालते वे परमपद को प्राप्त हों ।। २२ ।।

ॐ ह्रीं ग्रन्थफलप्ररूपक श्रीलिंगपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २४४ ।।

(गाथा)

पव्वज्जहीणगहिणं णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।
आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। १८ ।।
एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।
बहुलं पि जाणमाणो भावविणट्ठो ण सो समणो।। १९ ।।
दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देदि वीसट्ठो।
पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो।। २० ।।
पुंच्छलिघरि जो भुञ्जइ णिच्चं संथुणादि पोसए पिंडं।
पावदि बालसहावं भावविणट्ठो ण सो सवणो।। २१ ।।
इय लिंगपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहिं देसियं धम्मं।
पालेइ कट्ठसहियं सो गाहदि उत्तमं ठाणं।। २२ ।।

।। शीलपाहुड़ ।।

(दोहा)

भव की प्रकृति निवारिकै, प्रगट किये निजभाव।
ह्वै अरहंत जु सिद्ध फुनि, वंदूं तिनि धरि चाव।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब प्रथम इष्टदेव के नमस्कारपूर्वक ग्रन्थ लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं –

(हरिगीत)

विशाल जिनके नयन अर रक्तोत्पल जिनके चरण ।
त्रिविध नम उन वीर को मैं शील गुण वर्णन करूँ ।। १ ।।

ॐ ह्रीं इष्टदेवनमनपूर्वकप्रतिज्ञावाक्यप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं..।। २४५।।

अब शील और ज्ञान में विरोध नहीं है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

शील एवं ज्ञान में कुछ भी विरोध नहीं कहा।
शील बिन तो विषयविष से ज्ञानधन का नाश हो।। २ ।।

ॐ ह्रीं शीलज्ञानयो-अविरोधप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २४६।।

अब ज्ञानप्राप्ति और विषय त्याग की दुर्लभता को बताते हैं –

(हरिगीत)

बड़ा दुष्कर जानना अर जानने की भावना।
एवं विरक्ति विषय से भी बड़ी दुष्कर जानना।। ३ ।।

(गाथा)

वीरं विसालणयणं रत्तुप्पलकोमलस्समप्पायं।
तिविहेण पणमिऊण सीलगुणाणं णिसामेह।। १ ।।
सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति।। २ ।।
दुक्खे णज्जदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं।। ३ ।।

विषय बल हो जबतलक तबतलक आतमज्ञान ना ।
केवल विषय की विरक्ति से कर्म का हो नाश ना।। ४ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानप्राप्ति-विषयत्यागस्यदुर्लभत्वनिरूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २४७ ।।

अब दर्शन-ज्ञान और चारित्र इन तीनों की संधि बताते हैं -

(हरिगीत)

दर्शन रहित यदि वेष हो चारित्र विरहित ज्ञान हो ।
संयम रहित तप निरर्थक आकास-कुसुम समान हो ।। ५ ।।
दर्शन सहित हो वेश चारित्र शुद्ध सम्यग्ज्ञान हो ।
संयम सहित तप अल्प भी हो तदपि सुफल महान हो ।। ६ ।।

ॐ ह्रीं दर्शन-ज्ञान-चारित्र संधिप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि...।। २४८ ।।

अब ज्ञान के साथ-साथ विषयों से विरक्त होने की प्रेरणा देते हैं -

(हरिगीत)

ज्ञान हो पर विषय में हों लीन जो नर जगत में ।
रे विषयरत वे मूढ़ डोलें चार गति में निरन्तर ।। ७ ।।
जानने की भावना से जान निज को विरत हों ।
रे वे तपस्वी चार गति को छेदते संदेह ना ।। ८ ।।

(गाथा)

ताव ण जाणदि णाणं विसयबलो जाव वट्टए जीवो।
विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्मं।। ४ ।।
णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं।
संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्व।। ५ ।।
णाणं चरित्तसुद्धं लिंगग्गहणं च दंसणविसुद्धं।
संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफलो होइ।। ६ ।।
णाणं णाऊण णरा केई विसयाइभावसंसत्ता।
हिंडंति चादुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढ़ा।। ७ ।।
जे पुण विसयविरत्ता णाणं णाऊण भावणासहिदा।
छिंदंति चादुरगदिं तवगुणजुत्ता ण संदेहो।। ८ ।।

जिसतरह कंचन शुद्ध हो खड़िया-नमक के लेप से ।
बस उसतरह हो जीव निर्मल ज्ञान जल के लेप से ।। ९ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानेनासिहीविषयविरक्तिप्रेरक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २४९ ।।

अब ज्ञान की निर्दोषता बताते हैं –

(हरिगीत)

हो ज्ञानगर्भित विषयसुख में रमें जो जन योग से ।
उस मंदबुद्धि कापुरुष के ज्ञान का कुछ दोष ना ।। १० ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानस्य निर्दोषताप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २५० ।।

अब निर्वाणप्राप्ति का उपाय बताते हैं –

(हरिगीत)

जब ज्ञान, दर्शन, चरण, तप सम्यक्त्व से संयुक्त हो ।
तब आतमा चारित्र से प्राप्ति करे निर्वाण की ।। ११ ।।

शील रक्षण शुद्ध दर्शन चरण विषयों से विरत ।
जो आत्मा वे नियम से प्राप्ति करें निर्वाण की ।। १२ ।।

ॐ ह्रीं निर्वाणप्राप्त्युपायप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २५१ ।।

(गाथा)

जह कंचणं विसुद्धं धम्मइयं खडियलवणलेवेण।
तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण।। ९ ।।
णाणस्स णत्थि दोसो कुप्पुरिसाणं वि मंदबुद्धीणं।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति।। १० ।।
णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाण चरित्तसुद्धाणं।। ११ ।।
सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाण दिढचरित्ताणं।
अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं।। १२ ।।

अब ज्ञान की सार्थकता और निरर्थकता बताते हैं –

(हरिगीत)

सन्मार्गदर्शी ज्ञानि तो है सुज्ञ यद्यपि विषयरत ।
किन्तु जो उन्मार्गदर्शी ज्ञान उनका व्यर्थ है ।। १३ ।।

यद्यपि बहुशास्त्र जाने कुमत कुश्रुत प्रशंसक ।
रे शीलव्रत से रहित हैं वे आत्म–आराधक नहीं ।। १४ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानस्य सार्थकत्व–निरर्थकत्वनिरूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं ..।। २५२ ।।

अब मनुष्यजन्म की सार्थकता बताते हैं –

(हरिगीत)

रूप यौवन कान्ति अर लावण्य से सम्पन्न जो ।
पर शीलगुण से रहित हैं तो निरर्थक मानुष जनम ।। १५ ।।

ॐ ह्रीं शीलरहितमनुष्यजन्म–निरर्थकत्वप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं .।। २५३ ।।

अब शील ही उत्तम हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

व्याकरण छन्दरु न्याय जिनश्रुत आदि से सम्पन्नता ।
हो किन्तु इनमें जान लो तुम परम उत्तम शील गुण ।। १६ ।।

ॐ ह्रीं शील–उत्कृष्टत्वप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २५४ ।।

(गाथा)

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।
उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं तेसिं।। १३ ।।
कुमयकुसुदपसंसा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
शीलवदणाणरहिदा ण हु ते आराधया होंति।। १४ ।।
रूवसिरिगव्विदाणं जुव्वणलावण्णकंतिकलिदाणं।
सीलगुणवज्जिदाणं णिरत्थयं माणुसं जम्म।। १५ ।।
वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु ।
वेदेऊण सुदेसु य तेसु सुयं उत्तमं शीलं।। १६ ।।

अब शील की महिमा बताते हैं –

(हरिगीत)

शील गुण मण्डित पुरुष की देव भी सेवा करें ।
ना कोई पूछे शील विरहित शास्त्रपाठी जनों को ।। १७ ।।
हों हीन कुल सुन्दर न हों सब प्राणियों से हीन हों ।
हों वृद्ध किन्तु सुशील हों नरभव उन्हीं का सफल है ।। १८ ।।

ॐ ह्रीं शीलसहितमनुष्यजन्मसार्थकत्वप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं ..।। २५५ ।।

अब शील के परिवार को बताते हैं –

(हरिगीत)

इन्द्रियों का दमन करुणा सत्य सम्यक् ज्ञान–तप ।
अचौर्य ब्रह्मोपासना सब शील के परिवार हैं ।। १९ ।।

ॐ ह्रीं शीलपरिवारप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २५६ ।।

अब पुनः शील की महिमा बताते हैं –

(हरिगीत)

शील दर्शन–ज्ञान शुद्धि शील विषयों का रिपू ।
शील निर्मल तप अहो यह शील सीढ़ी मोक्ष की ।। २० ।।

ॐ ह्रीं शीलमहिमाप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २५७ ।।

(गाथा)

सीलगुणमंडि दाणं देवा भवियाण वल्लहा होंति।
सुदपारयपउरा णं दुस्सीला अप्पिला लोए।। १७ ।।
सव्वे वि य परिहीणा रूवणिरूवा वि पडिदसुवया वि।
सीलं जेसु सुसीलं सुजीविदं माणुसं तेसिं।। १८ ।।
जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे।
सम्मद्दंसण णाणं तओ य सीलस्स परिवारो।। १९ ।।
सीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धी य णाणसुद्धी य।
सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं।। २० ।।

अब विषयविष को महाप्रबल बताते हैं –

(हरिगीत)

हैं यद्यपि सब प्राणियों के प्राण घातक सभी विष ।
किन्तु इन सब विषों में है महादारुण विषयविष ।। २१ ।।
बस एक भव का नाश हो इस विषम विष के योग से ।
पर विषयविष से ग्रसितजन चिरकाल भववन में भ्रमें ।। २२ ।।
अरे विषयासक्त जन नर और तिर्यग् योनि में ।
दुःख सहें यद्यपि देव हों पर दुःखी हों दुर्भाग्य से ।। २३ ।।

ॐ ह्रीं विषयविषप्रभावनिरूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २५८ ।।

अब सागार संयमाचरणचारित्र का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

अरे कुछ जाता नहीं तुष उड़ाने से जिसतरह।
विषय सुख को उड़ाने से शीलगुण उड़ता नहीं ।। २४ ।।

ॐ ह्रीं विषयत्यागप्रेरक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २५९ ।।

अब 'शील ही उत्तम है' अब यह बताते हैं–

(हरिगीत)

गोल हों गोलार्द्ध हों सुविशाल हों इस देह के ।
सब अंग किन्तु सभी में यह शील उत्तम अंग है ।। २५ ।।

ॐ ह्रीं शीलोत्तम श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २६० ।।

(गाथा)

जह विसयलुद्ध विसदो तह थावरजंगमाण घोराणं।
सव्वेसिं पि विणासदि विसयविसं दारुणं होई ।। २१ ।।
वारि एक्कम्मि य जम्मे मरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो।
विसयविसपरिहया णं भमंति संसारकंतारे ।। २२ ।।
णरएसु वेयणाओ तिरिक्खए माणवेसु दुक्खाइं।
देवेसु वि दोहग्गं लहंति विसयासिया जीवा ।। २३ ।।
तुसधम्मंतबलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि।
तवसीलमंत कुसली खवंति विसयं विस व खलं ।। २४ ।।
वट्टेसु य खंडेसु य भद्देसु य विसालेसु अंगेसु।
अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं ।। २५ ।।

अब विषयों में लीन जीव की दुर्दशा बताते हैं–

(हरिगीत)

भव–भव भ्रमें अरहट घटीसम विषयलोलुप मूढजन ।
साथ में वे भी भ्रमें जो रहे उनके संग में ।। २६ ।।

ॐ ह्रीं विषयासक्तिफलप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २६१ ।।

अब शील द्वारा कर्मबंध का अभाव होता है और मोक्षप्राप्ति होती है यह बताते हैं– (हरिगीत)

इन्द्रिय विषय के संग पढ़ जो कर्म बाँधे स्वयं ही ।
सत्पुरुष उनको खपावे व्रत–शील–संयमभाव से ।। २७ ।।

ज्यों रत्नमंडित उदधि शोभे नीर से बस उसतरह ।
विनयादि हों पर आत्मा निर्वाण पाता शील से ।। २८ ।।

श्वान गर्दभ गाय पशु अर नारियों को मोक्ष ना ।
पुरुषार्थ चौथा मोक्ष तो बस पुरुष को ही प्राप्त हो ।। २९ ।।

यदि विषयलोलुप ज्ञानियों को मोक्ष हो तो बताओ ।
दशपूर्वधारी सात्यकीसुत नरकगति में क्यों गया ।। ३० ।।

ॐ ह्रीं शीलसम्पन्नपुरुषस्यैवमोक्षपात्रताप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं स्वाहा।। २६२ ।।

(गाथा)

पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विसयलोलेहिं।
संसार भमिदव्वं अरयघरट्टं व भूदेहिं।। २६ ।।
आदेहि कम्मगंठी जा बद्धा विसयरागरंगेहिं।
तं छिन्दन्ति कयत्था तवसंजमसीलयगुणेण।। २७ ।।
उदधी व रदणभरिदो तवविणयंसीलदाणरयणाणं।
सोहेंतो य ससीलो णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो।। २८ ।।
सुणहाण गद्दहाण ण गोवसुमहिलाण दीसदे मोक्खो।
जे सोधंति चउत्थं पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहिं।। २९ ।।
जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो।
तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं।। ३० ।।

अब शील के महत्त्व को बताते हैं–

(हरिगीत)

यदि शील बिन भी ज्ञान निर्मल ज्ञानियों ने कहा तो ।
दशपूर्वधारी रूद्र का भी भाव निर्मल क्यों न हो ।। ३१ ।।
यदि विषयविरक्त हो तो वेदना जो नरकगत ।
वह भूलकर जिनपद लहे यह बात जिनवर ने कही ।। ३२ ।।
अरे! जिसमें अतीन्द्रिय सुख ज्ञान का भण्डार है ।
वह मोक्ष केवल शील से हो प्राप्त – यह जिनवर कहें ।। ३३ ।।
ये ज्ञान दर्शन वीर्य तप सम्यक्त्व पंचाचार मिल ।
जिम आग ईंधन जलावे तैसे जलावें कर्म को ।। ३४ ।।

ॐ ह्रीं शीलस्यमोक्षकारणत्वनिरूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २६३ ।।

अब आठ कर्मों के अभावपूर्वक सिद्धपरमेष्ठी बनते हैं, यह बताते हैं–

(हरिगीत)

जो जितेन्द्रिय धीर विषय विरक्त तपसी शीलयुत ।
वे अष्ट कर्मों से रहित हो सिद्धगति को प्राप्त हों ।। ३५ ।।

ॐ ह्रीं शीलसम्पन्नस्यसिद्धत्वप्राप्तिप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं ..।। २६४ ।।

(गाथा)

जइ णाणेण विसोहो सीलेण विणा बुहेहिं णिद्दिट्ठो।
दसपुव्वियस्स भावो य ण किं पुणु णिम्मलो जादो।। ३१ ।।
जाए विसयविरत्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्ढमाणेण।। ३२ ।।
एवं बहुप्पयारं जिणेहि पच्चक्खणाणदरसीहिं।
सीलेण य मोक्खपयं अक्खातीदं य लोयणाणेहिं।। ३३ ।।
सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयारमप्पाणं ।
जलणो वि पवणसहिदो डहंति पोरायणं कम्मं।। ३४ ।।
णिद्दड्ढअट्ठकम्मा विसयविरत्ता जिदिंदिया धीरा।
तवविणयसीलसहिदा सिद्धा सिद्धिं गदिं पत्ता।। ३५ ।।

अब लावण्य और शीलयुक्तमुनि प्रशंसा के योग्य हैं, यह बताते हैं–

(हरिगीत)

जिस श्रमण का यह जन्म तरु सर्वांग सुन्दर शीलयुत ।
उस महात्मन् श्रमण का यश जगत में है फैलता ।। ३६ ।।

ॐ ह्रीं शीलयुक्तमुनिप्रशंसाप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि..।। २६५ ।।

अब सम्यग्दर्शन से रत्नत्रय की प्राप्ति होती है, यह बताते हैं–

(हरिगीत)

ज्ञान–ध्यानरु योग–दर्शन शक्ति के अनुसार हैं ।
पर रत्नत्रय की प्राप्ति तो सम्यक्त्व से ही जानना ।। ३७ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनरत्नत्रयप्राप्तिकारणनिरूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि.।। २६६ ।।

अब जिनवचनों को ग्रहण करने की महिमा बताते हैं–

(हरिगीत)

जो शील से सम्पन्न विषय विरक्त एवं धीर हैं ।
वे जिनवचन के सारग्राही सिद्ध सुख को प्राप्त हो ।। ३८ ।।

ॐ ह्रीं शीलसम्पन्नस्यैवजिनवचनग्राहकत्वनिरूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २६७ ।।

(गाथा)

लावण्यसीलकुसलो जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स।
सो सीलो स महप्पा भमिज्ज गुणवित्थरं भविए।। ३६ ।।
णाणं झाणं जोगो दंसणसुद्धीय वीरियायत्तं।
सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे बोहिं।। ३७ ।।
जिणवयणगहिदसारा विसयविरत्ता तवोधणा धीरा।
सीलसलिलेण ण्हादा ते सिद्धालयसुहं जंति।। ३८ ।।

अब शील में सम्पन्न आराधना के बारे में बताते हैं–

(हरिगीत)

सुख–दुख विवर्जित शुद्धमन अर कर्मरज से रहित जो ।
वह क्षीणकर्मा गुणमयी प्रकटित हुई आराधना ।। ३९ ।।

ॐ ह्रीं शीलसम्पन्नस्यैवआराधनाप्ररूपक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि...।। २६८ ।।

अब ग्रन्थ को पूर्ण करते हुये ज्ञान की आराधना के बारे में बताते हैं–

(हरिगीत)

विषय से वैराग्य अर्हतभक्ति सम्यक्दर्श से ।
अर शील से संयुक्त ही हो ज्ञान की आराधना ।। ४० ।।

ॐ ह्रीं शीलसहितज्ञानाराधनप्रेरक श्रीशीलपाहुड़ाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २६९ ।।

जयमाला

(दोहा)

पूजन अर अर्घ्यावली पूर्ण हुई सानन्द।
अब जयमाला को सुनो मन में धरि आनन्द।। १ ।।

(रोला)

अरे लिंगपाहुड़ में मुनिवर कुन्दकुन्द ने।
भावलिंग बिन द्रव्यलिंगधर मुनीवरों को।।
समझाया है बहुत भाव से करुणा करके।
सावधान है किया जगाया है जन–जन को ।। २।।

(गाथा)

सव्वगुणखीणकम्मा सुहदुक्खविवज्जिदा मणविसुद्धा।
पप्फोडियकम्मरया हवंति आराहणापयडा।। ३९ ।।
अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं।
सीलं विसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं।। ४० ।।

शिथिलाचारी सन्तों का आचरण देखकर।
अन्तर से उद्वेलित होकर कुन्दकुन्द मुनि।।
अधिक कहें क्या करुणा करके तन से मन से।
शिथिल आचरण वालों पर जमकर बरसे हैं ।। ३।।

दुखी हृदय से वे कहते हैं नेह रखें जो।
श्रावकगण में शिष्यगणों में रे तन-मन से।।
नाचें गावें और बजावे वाद्य यंत्र को।
वे मुनिवर तो होते हैं तिर्यंच सरीखे।। ४।।

लड़ें-लड़ावें कलह करें अर शादि करावें।
राग नारियों से करते अर ईर्ष्या करते।।
जमी खोदते भूमि रौंधते पेड़ छेदते।
ऐसे मुनिवर जाते हैं नरकों में निश्चित ।। ५।।

करें करावें और करें अनुमोदन भाई।
तीनों का हो बंध एक-सा जग में भाई।।
अथवा प्रेरित करें बात तो सभी एक है।
अधिक कहें क्या अतः पाप से बचना भाई ।। ६।।

परम सत्य यह बात नहीं है इसमें संशय।
क्योंकि ऐसे जीवों की गति ऐसी होती।।
जो आतम की करें साधना सच्चे मन से।
स्वर्ग-मोक्ष तो ऐसे मुनिवर ही जाते हैं।। ७।।

मुनीजनों का अपनी-अपनी मर्यादा में।
रहना ही है शील शील संयम स्वरूप है।।
श्रावकजन भी सप्त शील का पालन करते।
असल धर्म है शील शील की महिमा भारी ।। ८।।

होवे इन्द्रिय दमन और हो आत्मसाधना।
आतम की उपलब्धि शील के साथी हैं सब।।
शील मोक्ष सोपान शील निर्मल तप जानो।
विषयों का यह रिपू मोक्ष का मारग मानो ।। ९।।

जो हैं विषय विरक्त और संयम के धारी।
धीर–वीर वे पुरुष शील से संयत होते।।
जिनवचनों के आराधक जो ज्ञानीजन हैं।
आतम में रत संत सिद्ध सुख को पाते हैं।। १०।।

अरे हजारों वर्ष पूर्व जो बात लिखी है।
वैसा शिथिलाचार आज भी विद्यमान है।।
कुन्दकुन्द ने पूरे बल से रोका उसको।
आज कौन है महापुरुष जो रोके उसको? ।। ११।।

ॐ ह्रीं श्रीलिंग–शीलपाहुड़परमागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

अरे लिंग अर शील की महिमा अपरम्पार।
ये दोनों पाहुड़ अरे उसे बतावन हार।। १२ ।।

इसप्रकार पूरण हुआ पूजन और विधान।
शिथिल आचरण दूर हो सब हों चारितवान।। १३ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

महाऽर्घ्य

(अडिल्ल[१])

पंच परम परमेष्ठी पूजूँ भाव से।
उनकी वाणी पूजूँ अधिक उछाह से।।
रतनत्रयमय परम शुद्ध उपयोग है।
दश धर्मों से मंडित पावन योग है।। १ ।।
गिरि कैलाश महान और पावापुरी।
सम्मेदाचल गिरनारी चम्पापुरी।।
आदि अनेकों सिद्धक्षेत्र मन भावने।
और अनेकों अतिशय क्षेत्र सुहावने।। २ ।।
तीन लोक में थान-थान अति ही घने।
कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालय बने।।
इन सबकी पूजन करता हूँ चाव से।
बारह भावन भाऊँ अति उत्साह से।। ३ ।।
धर्मध्यान शुद्धोपयोग का योग है।
और परम तप स्वाध्याय संयोग है।।
यह सब चाहूँ और न कोई चाह है।
इन सबमें ही मेरा अति उत्साह है।। ४ ।।

(दोहा)

एकमात्र आराध्य है अपना ज्ञायकभाव।
उसमें तन्मय होय तो होय विभाव अभाव।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधुपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो नमः उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नमः श्री सम्मेदशिखर-गिरनारगिरि-कैलाशगिरि-चम्पापुर-पावापुर-आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः त्रिलोकसम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नमः सर्वपूज्यपदेभ्यो नमः महार्घ्यं....

१. अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा? .... की धुन पर गायें।

शान्ति पाठ

(हरिगीत)

हे शान्ति के सागर जिनेश्वर! शान्ति के ही रूप हो।
नासाग्रदृष्टि शान्त मुद्रा स्वयं शान्तिस्वरूप हो।।
सारे जगत में शान्ति हो सारा जगत यह चाहता।
किन्तु सारे जगत को अपना बनाना चाहता।। १ ।।

जबकि इक अणुमात्र भी तो जगत में इसका नहीं।
अधिक क्या अणुमात्र को अपना बना सकता नहीं।।
यह बात शाश्वत सत्य है कोई किसी का रंच भी।
अच्छा-बुरा या अन्य कुछ भी कभी कर सकता नहीं।। २ ।।

मारना अर बचाना या दु:ख-सुख का दान भी।
कोई किसी का ना करे आदान और प्रदान भी।।
यह बात केवलि ने कही जिनशास्त्र में उल्लेख है।
जैन शासन में समझ लो यह छठी का लेख है।। ३ ।।

शान्ति और अशान्ति ये तो आतमा के भाव हैं।
कोई किसी के क्यों करे ये तो स्वयं के भाव हैं।।
रे स्वयं मिथ्या मान्यता को बुद्धिपूर्वक छोड़ दें।
एवं स्वयं ही स्वयं में निज आतमा को जोड़ दें।। ४ ।।

शान्ति होती प्राप्त केवल आतमा के ज्ञान से।
आतमा के ज्ञान से अर आतमा के ध्यान से।।
यह ही परम सत्यार्थ है यह ही परम भूतार्थ है।
और सब व्यवहार है बस एक यह परमार्थ है।। ५ ।।

व्यवहार से हम भावना भाते सुखी संसार हो।
सुख-शान्ति चारों ओर हो ना समृद्धि का पार हो।।
अनुकूलता हो सब तरफ न आर हो न पार हो।
अधिक क्या अब हम कहें बस सब सुखी संसार हो।। ६ ।।

(दोहा)

सभी जीव इस लोक के सुखी रहें सर्वत्र।
मौसम की अनुकूलता बनी रहे सर्वत्र ।। ७ ।।

प्राप्त करें सब जगत में निज आनन्द अपार।
निज आतम का ध्यान धर आतम शान्ति अपार।। ८।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

विसर्जन पाठ

(दोहा)

जो कुछ जैसी बन पड़ी अपनी शक्ति प्रमाण।
हमने पूजन की प्रभो अपनी भक्ति प्रमाण।। १ ।।

हमने जाना जो प्रभो जिनवाणी का मर्म।
उसके ही अनुसार सब यह व्यवहारिक धर्म।। २ ।।

इसमें जो कुछ रहीं हों कमियाँ विविध प्रकार।
विधि के जाननहार जन इसमें करें सुधार।। ३ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अष्टपाहुड़ भक्ति

(रेखता)

अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान करें हम नित इसका गुणगान।
हमारे में है जितनी भक्ति और हम में है जितना ज्ञान ।। टेक ।।

धर्म का मूल कहा सम्यक्त्व और चारित्र स्वयं है धर्म।
अरे रे सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित से कट जाते सब कर्म।।
अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान करें हम नित इसका गुणगान।
हमारे में है जितनी शक्ति और हम में है जितना ज्ञान ।। १ ।।

जगत में जहाँ–जहाँ हैं कीट–पतंगे यत्र–तत्र–सर्वत्र।
सूत्र से सभी चराचर जगत जानने में आता सर्वत्र।।
अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान करें हम नित इसका गुणगान।
हमारे में है जितनी भक्ति और हम में है जितना ज्ञान ।। २ ।।

सूत्रपाहुड़ से सबके हाथ लगा है पावनता का सूत्र।
अरे यह आगम ही है सूत्र और परमागम भी है सूत्र।।
अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान करें हम नित इसका गुणगान।
हमारे में है जितनी शक्ति और हम में है जितना ज्ञान ।। ३ ।।

भाव से ही होती है मुक्ति भाव ही है मुक्ति का मार्ग।
भाव ही मोक्ष भाव ही मार्ग नहीं है अन्य कोई सन्मार्ग।।
अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान करें हम नित इसका गुणगान।
हमारे में है जितनी भक्ति और हम में है जितना ज्ञान ।। ४ ।।

यद्यपि भावलिंग के साथ नियम से होता है द्रवलिंग।
मोक्ष का कारण केवल भाव द्रव्य तो होता है परभाव।।
अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान करें हम नित इसका गुणगान।
हमारे में है जितनी शक्ति और हम में है जितना ज्ञान।। ५ ।।

आतमा के आराधन से प्रगट हो परमेष्ठी पर्याय।
आत्मा के ही आश्रय से प्रगट हो रत्नत्रय पर्याय।।
अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान करें हम नित इसका गुणगान।
हमारे में है जितनी भक्ति और हम में है जितना ज्ञान।। ६ ।।

दिखाई देता है जो आज साधु चर्या में शिथिलाचार।
अरे रे समझाया है बहुत लगाई है कठोर फटकार।।
अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान करें हम नित इसका गुणगान।
हमारे में है जितनी शक्ति और हम में है जितना ज्ञान।। ७ ।।

जगत में शील धर्म है श्रेष्ठ सभी धर्मों का है शिरमोर।
शील की महिमा अपरंपार शील संयम का ओर न छोर।।
अष्टपाहुड़ यह ग्रन्थ महान करें हम नित इसका गुणगान।
हमारे में है जितनी भक्ति और हम में है जितना ज्ञान।। ८ ।।

(दोहा)

शिथिल आचरण के विरुध है यह अद्भुत क्रान्ति।
आलोड़न जो जन करें पावें आतम शान्ति।। ९ ।।

पूरण हुआ विधान यह अक्टूबर अठवीस।
दो हजार सन् अठारह कार्तिकवदि पंचमीश।। १० ।।

–●–

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका ५०.००
२-६. समयसार अनुशीलन भाग १ से ५ १२५.००
७. समयसार का सार ३०.००
८. गाथा समयसार १०.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका ५०.००
१०-१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग १ से ३ ९५.००
१३. कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन २०.००
१४. प्रवचनसार का सार ३०.००
१५. नियमसार : आत्मप्रबोधिनी टीका ५०.००
१६-१७. नियमसार अनुशीलन भाग १ से ३ ७०.००
१८. छहढाला का सार १५.००
१९. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार ३०.००
२०. वैराग्य महाकाव्य २५.००
२१. समयसार महामण्डल विधान २५.००
२२. समयसार महामण्डल विधान (गाथा सहित) ३५.००
२३. प्रवचनसार महामण्डल विधान २०.००
२४. प्रवचनसार महामण्डल विधान (गाथा सहित) २०.००
२५. नियमसार महामण्डल विधान २५.००
२६. नियमसार महामण्डल विधान (गाथा सहित) ३०.००
२७.दर्शन-सूत्र-चारित्रपाहुड़ मण्डल विधान १०.००
२८. बढ़ते कदम १०.००
२९. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय १५.००
३०. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व २०.००
३१. परमभावप्रकाशक नयचक्र ४०.००
३२. चिन्तन की गहराइयाँ ३०.००
३३. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ २५.००
३४. धर्म के दशलक्षण २०.००
३५. क्रमबद्धपर्याय २०.००
३६. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (पूर्वार्द्ध) २०.००
३७. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (उत्तरार्द्ध) १०.००
३८. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (सम्पूर्ण) ३०.००
३९. बिखरे मोती १६.००
४०. सत्य की खोज २५.००
४१. अध्यात्म नवनीत १५.००
४२. आप कुछ भी कहो १५.००
४३. आत्मा ही है शरण १५.००
४४. सुक्ति-सुधा १८.००
४५. बारह भावना : एक अनुशीलन १६.००
४६. दृष्टि का विषय १०.००
४७. गागर में सागर ७.००
४८. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव १२.००
४९. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन १५.००
५०. रक्षाबन्धन और दीपावली ५.००
५१. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम ५.००
५२. युगपुरुष कानजीस्वामी ५.००
५३. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका २०.००
५४. योगसार अनुशीलन २५.००
५५. मैं कौन हूँ ११.००
५६. रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का १०.००
५७. निमित्तोपादान ७.००
५८. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में ५.००
५९. मैं स्वयं भगवान हूँ ५.००
६०-६१. ध्यान का स्वरूप/रीति-नीति ४.००
६२. शाकाहार ५.००
६३. भगवान ऋषभदेव ४.००
६४. तीर्थंकर भगवान महावीर ३.००
६५. चैतन्य चमत्कार ४.००
६६. गोली का जवाब गाली से भी नहीं २.००
६७. गोम्मटेश्वर बाहुबली २.००
६८. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर २.००
६९. अनेकान्त और स्याद्वाद ३.००
७०. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर ६.००
७१. बिन्दु में सिन्धु २.५०
७२. जिनवरस्य नयचक्रम १०.००
७३. पश्चात्ताप खण्डकाव्य १०.००
७४. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वंदना २.००
७५. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद २.५०
७६. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद १.००
७७. समयसार पद्यानुवाद ३.००
७८. योगसार पद्यानुवाद १.००
७९. समयसार कलश पद्यानुवाद ३.००
८०. प्रवचनसार पद्यानुवाद ३.००
८१. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद १.००
८२. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद ३.००
८३. नियमसार पद्यानुवाद २.५०
८४. नियमसार कलश पद्यानुवाद ५.००
८५. सिद्धभक्ति १०.००
८६. अर्चना जेबी १.५०
८७. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित) ५.००
८८. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित) ५.००
८९-९०. बालबोध पाठमाला भाग २ से ३ ८.००
९१-९२. वीतराग विज्ञान पाठमाला १ से ३ १५.००
९३-९४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ से २ १२.००
९५. भगवान महावीर और उनकी जन्मभूमि ३.००
९६. समाधिमरण या सल्लेखना ५.००
९७. ये है मेरी नारियाँ ५.००

डॉ. भारिल्ल पर प्रकाशित साहित्य

१. तत्त्ववेत्ता डॉ. हकमचन्द भारिल्ल (अभिनंदन ग्रंथ) १५०.००
२. डॉ. हकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व - डॉ. महावीरप्रसाद जैन ३०.००
३. डॉ. हकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य ह्न अरुणकुमार जैन १२.००
४. डॉ. भारिल्ल के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन - अखिल जैन बंसल २५.००
५. गुरु की दृष्टि में शिष्य ५.००
६. मनीषियों की दृष्टि में : डॉ. भारिल्ल ५.००
७. डॉ. हकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन ह्न सीमा जैन २५.००

प्रकाशनाधीन

१. शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. हकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन ह्न नीतू चौधरी
२. डॉ. हकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एव कर्तृत्व ह्न शिखरचन्द जैन
३. धर्म के दशलक्षण एक अनुशीलन ह्न ममता गुप्ता